Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कमला चौधरी

बेल-पत्र

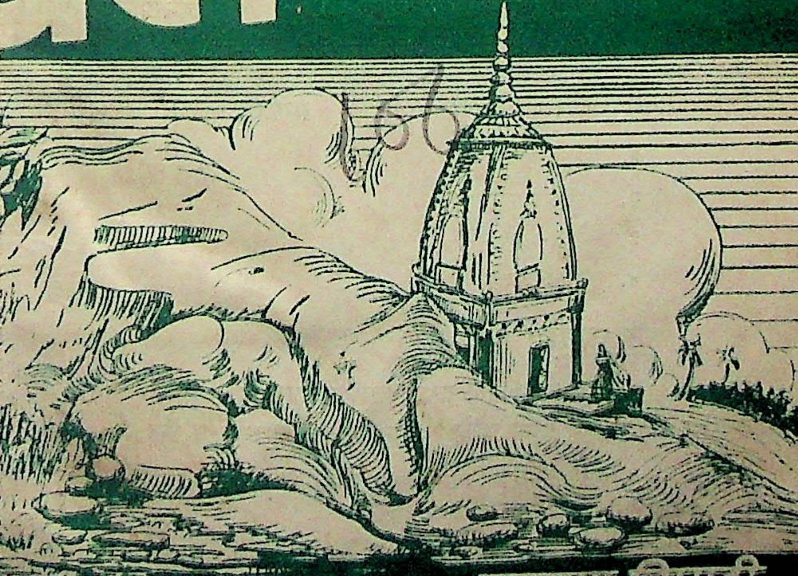

लक्ष्मण त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain.

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्व-बाल-साहित्य की सर्वोत्तम पुस्तकें

निष्काम-प्रकाशन से अति-सुन्दर, सुजिल्द, बहुत सस्ते संस्करणों में प्रकाशित हो रही हैं। भारत के भावी नागरिकों को सफल नागरिक बनाने के लिये निष्काम-प्रकाशन नन्हे चुन्नू-मुन्नू के लिये विज्ञान, समाज-धर्म, इतिहास आदि पर सरल पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है। बालकाव्य-माला के अतिरिक्त तीन बालोपयोगी मालाएँ और आरम्भ हो चुकी हैं जिनमें निम्नलिखित पुस्तकें बालकों के हाथ में जाने को लालायित हैं :

ज्ञान-सागर की गागरें

१. **ऐतिहासिक दृश्य**— (इतिहास)
प्रिंसिपल श्यामलाल, ऐम. ए., टी. डिप. (लन्दन)

२. **चन्दा मामा का देश**— (विज्ञान)
प्रोफ़ेसर सन्तोष नौटियाल, ऐम. ऐस-सी.

३. **वट-वृक्ष— एक आत्मकथा**— (वनस्पति-शास्त्र)
प्रोफ़ेसर सन्तोष नौटियाल ऐम. ऐस-सी.

नागरिक-शिक्षा-माला *सम्पादक*— श्री अरुण ऐम. ए.

१. बाल-आदर्श
२. कुछ शऊर की बातें
३. सेवा-मार्ग
४. बाल-शिक्षा

बाल-रङ्गमञ्च

बाल-हृदय-ग्राही तथा बाल-मस्तिष्क-ग्राह्य, बालकों द्वारा अभिनय करने योग्य छोटे छोटे नाटक— आठ भाग में।

लेखक— प्रिंसिपल श्यामलाल, ऐम. ए., टी. डिप. (लन्दन)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधुनिक कथाकार— १

Bel - Pattar

Kamla - chaudaree

कमला चौधरी

प्रोफ़ेसर लक्ष्मण त्रिपाठी;
साहित्यरत्न; एम. ए.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निष्काम प्रकाशन

आधुनिक • कथाकार • माला

H83.1
K11 B
18599
Rs 1-0-0
106

एक रुपया
प्रथम संस्करण
२००६ विक्रमीय

SPS
891.433 K 11 B
18599

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

मुद्रक-प्रकाशक—
मदन मोहन बी. ए.,
निष्काम प्रेस, मेरठ।

Madan Mohan
Nishkam
Press
Meerut

Renew

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधुनिक हिन्दी कहानी-साहित्य
और
श्री कमला चौधरी की कहानी-कला

रीति-कालीन बन्धनों से मुक्त होने के लिए हिन्दी कविता को अनथक प्रयत्न करना पड़ा; परन्तु हिन्दी-कहानी एकदम नई चीज़ थी, उस पर किसी तरह का कोई बन्धन था ही नहीं। बल्कि हिन्दी-कहानी को तो अपने लिए स्वयं कुछ बन्धनों (शैलियों, प्रथाओं और कुछ हद तक टैकनीक) का निर्माण करना था।

पहले महायुद्ध (१६१४ से १६१८) के आस-पास से हिन्दी-कविता में प्राचीन रूढ़ियों के विरुद्ध क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ और उन्हीं दिनों हिन्दी-कहानी का जन्म हुआ। संघर्ष दोनों को करना था; परन्तु उनके मार्ग एकदम भिन्न थे। दोनों ने संघर्ष किया और दोनों को असाधारण सफलता प्राप्त हुई, यद्यपि दोनों के संघर्ष के ढंग भिन्न-भिन्न थे। परिणाम यह हुआ कि दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ तक हिन्दी-कविता और हिन्दी-कहानी भारतीय साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर गईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जहाँ तक हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध है, कविता का उसमें सदैव अन्यतम स्थान रहा है— वीरगाथा-काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और अर्वाचीन काल— सभी में। परन्तु जन्म लेने के केवल बीस बरसों के भीतर ही हिन्दी-कहानी जिस तरह हिन्दी-साहित्य के मूर्धन्य भाग पर जा पहुँची, वह अवश्य ही अंकित करने योग्य है।

भारतवर्ष के इतिहास में इस सदी के पिछले तीन दशकों (प्रथम महायुद्ध की समाप्ति से आज तक) का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। महात्मा गांधी के महान् नेतृत्व में, इन्हीं तीन दशकों में, हिन्द की नव-जागरित राष्ट्रीय चेतना ने जैसे सदियों का मार्ग कुछ ही बरसों में पार कर लिया। इसी चेतना से भारतवर्ष का साहित्य, कला, प्रतिभा— सभी जैसे अनुप्राणित हो उठे। जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है, इस चेतना का सब से अधिक प्रभाव हिन्दी-कविता और हिन्दी-कहानी पर पड़ा।

यह इस कारण स्वाभाविक था कि इन्हीं दोनों साहित्यिक साधनों से राष्ट्रीय-चेतना सब से अधिक सहज और सुगम प्रकाशन प्राप्त कर सकी। कहानी द्वारा अपने मन के भाव जितनी अच्छी तरह व्यक्त किए जा सकते हैं, उतने प्रभावशाली ढंग से अन्य साधनों द्वारा नहीं किए जा सकते। उधर भावना और अनुभूति का जितना गहरा समावेश कविता में किया जा सकता है, उतना और साधनों में नहीं हो पाता।

परन्तु दूसरा महायुद्ध, जब अपनी पूर्ण उग्रता पर पहुंचा, तो उसने मानव समाज के अब तक के सम्पूर्ण मूल्यांकनों को एक तरह से झकझोर कर रख दिया। जिन आधारों पर अब तक की मानव-सभ्यता का निर्माण हुआ था, उन आधारों को भूकम्प का सा धक्का लगा। स्वभावतः उसका परिणाम विश्व भर के साहित्य पर पड़ा और हिन्दी भी उस प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से अछूती नहीं रही। साहित्य-निर्माण का सहज प्रवाह एकाएक मन्द पड़ गया। पुराने मूल्यांकन एकाएक छिन्न भिन्न हो गये थे, और नए मूल्यांकनों का निर्माण नहीं हो पाया था। इन परिस्थितियों में अधिकांश देशों में साहित्य विभिन्न वादों या आदर्शों के प्रसार का साधन मात्र बनकर रह गया।

जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है, इस परिस्थिति का सब से अधिक विषम प्रभाव भी हिन्दी-कहानी पर ही पड़ा। हिन्दी-कहानी की जो धारा बीस बरसों में ही अत्यन्त वेगवती नदी के समान बहने लगी थी, वह एकाएक अत्यन्त क्षीण-कलेवरा बन गई।

महायुद्ध के बाद संसार के विभिन्न देशों का साहित्य फिर से पल्लवित होने लगा है। परन्तु हिन्दी-कहानी के उपवन में अभी तक बहार के चिह्न नज़र नहीं आ रहे।

मुझे विश्वास है कि इस उपवन में भी वसन्त आएगा। इस विलम्ब के अनेक कारण हैं। पिछले दिनों के जिस राजनीतिक तूफ़ान को हमारा देश हाल ही में पार कर आया है, उसने देश की सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना को मूर्च्छितप्राय कर दिया था। वह मूर्च्छा चाहे टूट भले ही गई हो; मूर्च्छाजन्य कमज़ोरी अभी बाक़ी है।

इन भौतिक कारणों के अतिरिक्त हिन्दी-कहानी की शिथिलता का एक कारण यह भी है कि हिन्दी कहानी अपने लिए किसी तरह के बन्धनों (जैसा कि ऊपर कहा गया है: प्रथा, शैली और टैकनीक—आंशिक रूप में; क्योंकि टैकनीक तो सार्वभौम वस्तु है) का निर्माण अभी तक नहीं कर पाई थी। मेरी राय से हिन्दी-कहानी की रीढ़ कमज़ोर रह जाने का यह प्रमुख कारण है।

यह एक सचाई है कि विश्व के साहित्य में कहानी की महत्ता और लोकप्रियता बढ़ते जाने के साथ ही साथ उसके टैकनीक का भी निर्माण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जहाँ तक हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध है, कविता का उसमें सदैव अन्यतम स्थान रहा है— वीरगाथा-काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और अर्वाचीन काल— सभी में। परन्तु जन्म लेने के केवल बीस बरसों के भीतर ही हिन्दी-कहानी जिस तरह हिन्दी-साहित्य के मूर्धन्य भाग पर जा पहुँची, वह अवश्य ही अंकित करने योग्य है।

भारतवर्ष के इतिहास में इस सदी के पिछले तीन दशकों (प्रथम महायुद्ध की समाप्ति से आज तक) का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। महात्मा गांधी के महान् नेतृत्व में, इन्हीं तीन दशकों में, हिन्द की नव-जागरित राष्ट्रीय चेतना ने जैसे सदियों का मार्ग कुछ ही बरसों में पार कर लिया। इसी चेतना से भारतवर्ष का साहित्य, कला, प्रतिभा— सभी जैसे अनुप्राणित हो उठे। जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है, इस चेतना का सब से अधिक प्रभाव हिन्दी-कविता और हिन्दी-कहानी पर पड़ा।

यह इस कारण स्वाभाविक था कि इन्हीं दोनों साहित्यिक साधनों से राष्ट्रीय-चेतना सब से अधिक सहज और सुगम प्रकाशन प्राप्त कर सकी। कहानी द्वारा अपने मन के भाव जितनी अच्छी तरह व्यक्त किए जा सकते हैं, उतने प्रभावशाली ढंग से अन्य साधनों द्वारा नहीं किए जा सकते। उधर भावना और अनुभूति का जितना गहरा समावेश कविता में किया जा सकता है, उतना और साधनों में नहीं हो पाता।

परन्तु दूसरा महायुद्ध, जब अपनी पूर्ण उग्रता पर पहुंचा, तो उसने मानव समाज के अब तक के सम्पूर्ण मूल्यांकनों को एक तरह से झकझोर कर रख दिया। जिन आधारों पर अब तक की मानव-सभ्यता का निर्माण हुआ था, उन आधारों को भूकम्प का सा धक्का लगा। स्वभावतः उसका परिणाम विश्व भर के साहित्य पर पड़ा और हिन्दी भी उस प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से अछूती नहीं रही। साहित्य-निर्माण का सहज प्रवाह एकाएक मन्द पड़ गया। पुराने मूल्यांकन एकाएक छिन्न भिन्न हो गये थे, और नए मूल्यांकनों का निर्माण नहीं हो पाया था। इन परिस्थितियों में अधिकांश देशों में साहित्य विभिन्न वादों या आदर्शों के प्रसार का साधन मात्र बनकर रह गया।

जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है, इस परिस्थिति का सब से अधिक विषम प्रभाव भी हिन्दी-कहानी पर ही पड़ा। हिन्दी-कहानी की जो धारा बीस बरसों में ही अत्यन्त वेगवती नदी के समान बहने लगी थी, वह एकाएक अत्यन्त क्षीण-कलेवरा बन गई।

महायुद्ध के बाद संसार के विभिन्न देशों का साहित्य फिर से पल्लवित होने लगा है। परन्तु हिन्दी-कहानी के उपवन में अभी तक बहार के चिह्न नज़र नहीं आ रहे।

मुझे विश्वास है कि इस उपवन में भी वसन्त आएगा। इस विलम्ब के अनेक कारण हैं। पिछले दिनों के जिस राजनीतिक तूफ़ान को हमारा देश हाल ही में पार कर आया है, उसने देश की सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना को मूर्च्छितप्राय कर दिया था। वह मूर्च्छा चाहे टूट भले ही गई हो; मूर्च्छाजन्य कमज़ोरी अभी बाक़ी है।

इन भौतिक कारणों के अतिरिक्त हिन्दी-कहानी की शिथिलता का एक कारण यह भी है कि हिन्दी कहानी अपने लिए किसी तरह के बन्धनों (जैसा कि ऊपर कहा गया है: प्रथा, शैली और टैकनीक—आंशिक रूप में; क्योंकि टैकनीक तो सार्वभौम वस्तु है) का निर्माण अभी तक नहीं कर पाई थी। मेरी राय से हिन्दी-कहानी की रीढ़ कमज़ोर रह जाने का यह प्रमुख कारण है।

यह एक सचाई है कि विश्व के साहित्य में कहानी की महत्ता और लोकप्रियता बढ़ते जाने के साथ ही साथ उसके टैकनीक का भी निर्माण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होता चला गया है ; और उससे कहानी का क्षेत्र अधिकाधिक संकुचित और नियमबद्ध बनता गया है। बहुत संक्षेप में कहानी की यह टैकनीक इस प्रकार है—

कहानी में एक केन्द्रीय भाव रहना चाहिए। जिस कहानी में यह केन्द्रीय भाव जितने अधिक प्रभावशाली, मनोरंजक और क़ायल करने वाले ढंग से व्यक्त किया जायगा, वह कहानी उतनी ही श्रेष्ठ होगी। यह नितान्त आवश्यक है कि सम्पूर्ण कहानी में एक भी वाक्य, यहाँ तक कि एक भी शब्द ऐसा न हो, जो उक्त केन्द्रीय भाव के व्यक्तीकरण में स्पष्टतः सहायक न हो।

कहानी की उक्त टैकनीक के अनुसार उन्नीसवीं सदी की सैंकड़ों लोकप्रिय और उच्चकोटि की कहानियाँ आज दोषपूर्ण मानी जाने लगी हैं। वे अत्यन्त भावपूर्ण, कल्पनापूर्ण और द्रावक हैं, फिर भी उनमें गुथीलापन है, अनावश्यक विस्तार है और कहीं-कहीं तो केन्द्रीय भावों की बहुलता तक है। अँग्रेज़ी साहित्य में से थॉमस हार्डी तथा भारतीय साहित्य में से शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय की कितनी ही कहानियाँ यह निर्देश करने के लिये पेश की जा सकती हैं कि अत्यन्त रोचक और प्रभावशाली होते हुए भी वे टैकनीक की दृष्टि से दोषपूर्ण हैं। दूसरी ओर एण्टन चैखव, मोपासां, ओ० हैनरी और प्रेमचन्द की कितनी ही कहानियाँ वर्तमान टैकनीक की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि के नमूने के रूप में पेश की जा सकती हैं।

हिन्दी कहानी को अभी तक सबसे अधिक मूल्यवान देन प्रेमचन्द की है। यह समझना ग़लती होगी कि अब हिन्दी कहानी-साहित्य प्रेमचन्द को बहुत पीछे छोड़ आया है। प्रेमचन्द के जीवन-काल में, और उनके देहावसान के बाद कुछ वर्षों तक हिन्दी-कहानी में कितनी ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नवीन सूक्ष्म धाराएँ दिखाई दी थीं ; कितने ही नए प्रयोग जारी हुए थे और उन्हें देखकर, कम से कम मैं तो बहुत आशान्वित हो उठा था। परन्तु वे सूक्ष्म धाराएँ जैसे कुछ ही दूर पहुँचकर निर्वेग बन गईं और उन परीक्षणों से जैसे किसी नई सूझ का जन्म नहीं हो पाया, जो इस तरह के प्रयोगों को सजीव और सार्थक बनाती है।

* * *

हिन्दी कहानी-साहित्य के क्षेत्र में श्रीमती कमला चौधरी का उदय भी लगभग उसी रफ़्तार से हुआ, जिस रफ़्तार से हिन्दी कहानी का विकास हुआ था। सन् १९३३ में 'विशाल भारत' में 'साधना का उन्माद' शीर्षक कहानी पढ़ कर हिन्दी के कितने ही पुराने लेखक भी आश्चर्यान्वित हो उठे थे। 'साधना का उन्माद' एक नई लेखिका की रचना है, इस पर मानो किसी को सहसा विश्वास ही नहीं हुआ।

पिछले १५ बरसों में श्रीमती कमला चौधरी ने लगभग ६० कहानियां लिखी हैं। एक विशेष शैली के साथ उन्होंने कहानी-साहित्य के रंगमंच पर प्रवेश किया था। क्रमशः उन्होंने अपना क्षेत्र बढ़ाना शुरू किया। उनकी पहली श्रेष्ठ रचनाओं में उत्तर मध्य श्रेणी (higher middle class) की भारतीय नारी के कतिपय मनोभावों का बहुत सुन्दर चित्रण है। नारी-हृदय के भावों का जो चित्रण उन्होंने किया है, वह किसी पुरुष लेखक के लिए सम्भव ही नहीं था। 'साधना का उन्माद', 'करुणा', 'मधुरिमा', आदि उसी श्रेणी में हैं। इन्हीं दिनों श्रीमती चौधरी ने कतिपय सामाजिक विषयों पर भी कहानियां लिखीं; जिनमें स्वभावतः कोई अनोखापन नहीं आ सका।

श्रीमती कमला चौधरी के प्रतिभाशाली मस्तिष्क ने एक और नया प्रयोग किया। अनेक प्राचीन प्रसिद्ध कथाओं तथा लोक-गाथाओं को उन्होंने नए रूप में लिखना प्रारम्भ किया। ऐसे रूप में, जिससे उनके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

औचित्य की समुचित समीक्षा हो सके। 'अधूरा चित्र', 'टेक की रक्षा' आदि कहानियाँ इसी ढंग की हैं। इसी प्रयोग के साथ ही साथ उन्होंने 'पिकनिक', 'गण्डूषा' आदि कुछ हास्यरस की कहानियाँ भी लिखीं।

उनका तीसरा प्रयोग ऊँचे दर्जे की मनोवैज्ञानिक कहानियों के रूप में हिन्दी जगत के सामने आया। जीवन की कितनी ही अनोखी घटनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इन कहानियों में हुआ है। उदाहरण के लिये इस तरह की कहानियाँ हैं— 'हार', 'स्वप्न', 'वीणा', 'रोना' इत्यादि।

श्रीमती चौधरी का सबसे नया प्रयोग उनके भाव-कथा-चित्र हैं। 'यात्रा', 'चित्रकार', 'दिग्विजय' इत्यादि। हिन्दी कहानी में इस तरह के भाव कथानकों की बहुत कमी है। आशा है, अपने इस नए प्रयोग से कमलाजी हिन्दी कहानी को एक नई सफल शैली दे सकेंगी।

कहानी सबसे अधिक प्रभावशाली वहाँ होती है, जहाँ उसमें व्यक्तिगत अनुभूति का गहरा मिश्रण रहता है। श्रीमती कमला चौधरी की अनेक कहानियों में इस तरह की व्यक्तिगत अनुभूति प्रचुर और प्रभावशाली मात्रा में प्राप्त होती है। 'मातृहीना', 'रूपा' और 'कर्कशा' इसी ढंग की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ इसी कारण अत्यन्त द्रावक बन गई हैं।

'बेलपत्र' में श्रीमती कमला चौधरी की तीन अत्यन्त श्रेष्ठ कहानियाँ संग्रहीत हैं। ये तीनों कहानियाँ उनकी विभिन्न शैलियों की प्रतिनिधि हैं। मुझे विश्वास है कि इन कहानियों को पढ़ कर पाठक उनकी अन्य रचनाओं की ओर भी आकृष्ट होंगे।

२४ अप्रैल,
१९४९ ई०　　　　—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बेलपत्र

[श्री कमला चौधरी की तीन प्रतिनिधि कहानियाँ
एवम् उनका विशद व्याख्या-परिचय]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उपन्यास-सम्राट् श्री प्रेमचन्द
का एक चिरस्मरणीय पत्र—

जागरण-कार्यालय,

सरस्वती-प्रेस, काशी

सं० १९६५ P.

ता० २७-४-१९३४ ई०

प्रिय कमला —

पत्र मिला। तुम्हारी कहानियों का संग्रह निकल रहा है, बड़ा अच्छा है। अगर तुम्हें मेरी भूमिका का मोह हो तो मुझे कोई उज्र नहीं है। मैंने देहली से आते ही आते 'भ्रम' पढ़ा और तुम्हारी क़लम का क़ायल हूँ। मगर भूमिका क्या ऐसी ज़रूरी चीज़ है। मैं उसकी समालोचना 'हंस' में कर के जितना उसका प्रचार कर सकूंगा उतना भूमिका लिख कर नहीं। आइन्दा जैसी तुम्हारी राय।

शुभाभिलाषी
प्रेमचंद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जागरण-कार्यालय,

सरस्वती-प्रेस, काशी

सं० ९६२ P.

ता० 29 — 4 — 1934 ई०

प्रिय बच्चन —

पत्र मिला। तुम्हारी कविताओं का संग्रह मिल गई है, बड़ी सुन्दर हैं। अगर तुम्हें कोई पुस्तिका का मोह हो तो मुझे [illegible] है। मैं ने [illegible] आज 'प्रेम' पत्र और तुम्हारी कलम का कायल हूँ। अगर पुस्तिका आप जैसी सस्ती चीज़ है। मैं इसकी समालोचना इस [illegible] के लिए [illegible] पुस्तिका [illegible] रही। [illegible] तुम्हारा पत्र।

शुभाकांक्षी

प्रेमचंद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रीमती कमला चौधरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिचायिका

मार्च १९३१ की गुलाबी सर्दियाँ— मोहन-जो-दरो के भग्नावशेषों के दूर दूर तक बिखरे हुए ढूह। कराँची-कांग्रेस से लौटते हुए कुछ प्रतिनिधि-पर्यटकों का एक समूह भी उन युग-प्राचीन खंडहरों के बीच पुरातत्त्वविद् होने का उपक्रम-सा कर रहा था। उसी में एक मितभाषिणी किन्तु भावनाशील सुसंस्कृता देवी, विशेष मनोयोगपूर्वक, अपने मानस-लोक में, उन ध्वंसावशेषों में सोये संसार की मानों पुनः सृष्टि कर रहीं थीं। 'बेल-पत्र' में जिनकी कथा-वेलि के त्रिदल प्रस्तुत किये गये हैं, हिन्दी की श्रेष्ठ कहानी-लेखिका श्री कमला चौधरी की, मेरे मानस-पटल पर, यह पहली प्रतिच्छवि है।

तब वे कहानी लिखना प्रारंभ कर चुकीं थीं। हिन्दी कहानी की मन्दाकिनी, जो अपनी अपार साधना से बहा लाने में समर्थ हुए, आधुनिक हिन्दी-कथा-साहित्य के भगीरथ, स्वर्गीय मुंशी श्री प्रेमचन्द की दृष्टि में उनकी कृतियें आ चुकीं थीं (चढ़ चुकीं थीं, कहें, तो भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ अधिक अत्युक्ति न होगी)। श्री कमलाजी के प्रथम कहानी-संग्रह 'उन्माद' की प्रस्तावना उन्होंने स्वयं लिखी एवं उन्हें दुःख रहा-कि वे उस प्रस्तावना को जितनी विवरण-सहित लिखना चाहते थे, समयाभाव के कारण, उतनी न लिख पाये। उन्होंने उक्त भूमिका में, अपनी अनुपम शैली में शिकायत-सी भी की है कि उनके पास पुस्तक के प्रेस-प्रूफ बहुत विलम्ब से पहुँचे। श्री कमलाजी के नाम लिखा गया उनका एप्रिल २६, १९३४, का पत्र भी (जिसकी सचित्र प्रतिलिपि अन्यत्र दी जा रही है) हिन्दी-साहित्यिकों के नाम लिखे गये स्वर्गीय श्री प्रेमचन्द के पत्र-व्यवहार में, चिरस्मरणीय माना जायेगा।

कलाकार की सच्ची परिचायिका तो, वास्तव में उसकी कृतियाँ ही हैं, जिनमें कि उसका व्यक्तित्व ओतप्रोत रहता है। 'बेल-पत्र' में संकलित, लेखिका-श्री की तीन प्रतिनिधि कहानियाँ, इस दृष्टि से विशेष मूल्यवान हैं। प्रत्येक कहानी के पूर्व एक विशद व्याख्या-परिचय दिया गया है। तत्पश्चात् मूल-कहानियें (आद्योपान्त) दी गई हैं। इस प्रकार पुस्तक की समग्र आयोजना-मात्र ही लेखिका-श्री की कहानी-कला की एक प्रस्तावना ही है। फिर भी लेखक के जीवन-वृत्तान्त के उल्लेखों में अध्ययनशील पाठक, उसके कला-रहस्यों की खोज किया करते हैं। अतएव उनकी सहज जिज्ञासा एवं कुतूहल के समाधान के लिये यहाँ विदुषी लेखिका की जीवन-झाँकी की कुछ रेखाएँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है—

माँ-भारती के भाल के गौरव-बिन्दु के समान, हिन्दी-साहित्य की इस सुसंस्कृत साधिका ने अभी अपने जीवन के, कठिनाई से चार दशक पूरे किये हैं। पितामह राजा दीनदयाल, अवध की नवाबी एवं उसकी समग्र सुकुमार काव्य-संस्कृति की सुधि दिलाने वाले प्रतीक थे। पिताजी फ़ारसी-अरबी के पण्डित हैं। पति-गृह में पदार्पण पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री कमला जी की साहित्यिक अभिरुचि को अनुकूल प्रोत्साहन मिला। उनके पतिदेव डॉक्टर श्री जितेन्द्रमोहन चौधरी, युक्तप्रान्त के ख्यातनामा होम्योपैथिक चिकित्सक ही नहीं, वरन् अपनी गहरी साहित्यिक अनुभूति एवं काव्य-मर्मज्ञता के लिये अपने निकट के आत्मीय परिवार में सम्मान्य भी हैं। किन्तु इन सब अनुकूल परिस्थितियों के कारण श्री कमला जी की साहित्य-साधना का पथ सरल एवं सुगम रहा हो, वैसी बात नहीं है।

सदियों से पदाक्रान्त भारतभूमि ने उस पन्द्रह साल के चिर-स्मरणीय अन्तर में अपने मुक्ति-संग्राम के ज्वलन्त अध्यायों की सृष्टि की, जिसमें कि लेखिका-श्री की कहानी-कला ने अपना विकास पाया है। कलाकार सब से अधिक संवेदनशील प्राणी होता है। इसीलिए वे अपनी पद-दलित मातृभूमि की पुकार को सुनकर न केवल अपने जीवन के मधुमय वसन्त की ओर से मुँह मोड़ कर चल दीं, किन्तु साथ ही उन्होंने अपनी प्राणाधिक साहित्य-साधना को भी बार बार स्थगित करके देश-सेवा के अग्नि-पथ का अनुसरण किया। किस प्रकार अनेक बार लोहे की तानों के पीछे अथवा जन-संकुल सभा-समारोहों के बीच झपटे गए क्षणों में, उन्होंने हिन्दी पाठकों को अपनी अनमोल कहानियाँ भेंट की हैं, उन सबकी कहानी स्वयं अपने में एक अनुपम, रोमांचकारी एवं नाटकीय उपन्यास की कथा-भूमि होने के उपयुक्त है। श्री कमला चौधरी के कितने ही पाठक उन्हें विधान-परिषद् की सदस्या, अथवा ख्यातनामा जनसेविका के रूप में भी जानते होंगे। किन्तु क्या उनके व्यक्तित्व-दर्शन के लिए इतना कुछ ही पर्याप्त है? यदि उनके अगणित पाठक-पाठिकाओं को यह भी बता दिया जाये कि श्री कमला चौधरी एक आदर्श गृहिणी, स्नेहशीला माँ तथा अविस्मरणीया अतिथि-परिचारिका भी हैं तो उन्हें लगेगा कि अपनी कहानियों के अनुरूप ही श्री कमला जी, एक बहुमुखी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उदार एवं कलापूर्ण व्यक्तित्व भी रखती है। शिशुओं-सी सरल विश्वास-मयी, विवेक-सी सतत विश्वसनीय एवं काव्य-सी सदैव सजल एवं आर्द्र स्वभाव वाली श्री कमला चौधरी अपने सुदूर फैले हुए स्नेह-सूत्रों के बीच सतत आदरणीया एवं अविरत अनुराग-भूमि रही हैं।

श्री कमला चौधरी ने विगत १५-२० वर्षों में लगभग एक सौ कहानियों की सृष्टि की होगी। उनमें से कुछ अभी तक पुरानी नोट-बुकों में चिती पड़ी होंगी और जिन कहानियों को सँवारे जाने तथा साफ़ किये जाने का अवसर मिला उनमें से लगभग ५० कहानियाँ उनके क्रमशः प्रकाशित होने वाले कहानी-संकलनों में पाठकों के लिए सुलभ हैं। पहला कहानी-संग्रह 'उन्माद', जिसकी भूमिका श्री प्रेमचन्द ने लिखी थी, आज से १५ वर्ष पूर्व (प्रकाशक : साहित्य-सेवा-सदन, मेरठ) प्रकाशित हुआ था। उसकी प्रमुख आख्यायिका 'साधना का उन्माद' सन् १९३३ में 'विशाल-भारत' में जब प्रकाशित हुई, तो उसने तत्कालीन समालोचक-वर्ग को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया।

'पिकनिक' [प्रकाशक : सरस्वती प्रेस, बनारस ; प्रथम संस्करण १९३९] प्रकाशन-क्रम से द्वितीय कहानी-संकलन है। निश्चय ही इस अन्तर में लेखिका-श्री की कहानी-कला की मूलभूत प्रवृत्तियों को इस संग्रह में अधिक स्पष्टता एवं विकास मिला है और 'उन्माद' की भाँति इस संग्रह का नामकरण भी एक हास्य-रस-परक आख्यायिका— 'पिकनिक' के आधार पर हुआ है। 'पिकनिक' के अनेक संस्करण विगत वर्षों में उसकी लोकप्रियता के द्योतक हैं। इस पुस्तक के अनुवाद अनेक प्रांतीय भाषाओं में भी हुए, जिससे ज्ञात हुआ कि हिन्दी-लेखिका की मौलिक विशेषताओं ने हिन्दी-भाषी क्षेत्रों के परे भी अपना स्थायी प्रभाव छोड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'यात्रा' तीसरा कहानी-संग्रह है किन्तु वह भी लेखिका-श्री की नवीनतम कहानियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करता। उसका प्रकाशन भी आज से तीन वर्ष पूर्व [प्रकाशक : नवयुग-साहित्य-सदन, इन्दौर] हुआ था। किन्तु उसके पश्चात् लिखी गई कुछ उल्लेखनीय कहानियों के लिए, संभव है पाठकों को कुछ काल और प्रतीक्षा करनी पड़े— कारण कि श्री कमला चौधरी इस अन्तर में अपने प्रिय आख्यायिका-लेखन के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक धाराओं की ओर भी आकर्षित रही हैं। 'यात्रा' की कहानियाँ प्रौढ़ता एवं मनोविश्लेषण की दृष्टि से अधिक परिपक्व एवं प्रखर हैं, इसीलिए वे उनकी शैली के नवीनतम विकास के निकटतर मानी जा सकती हैं। 'बेलपत्र' की तीन कहानियों में दो— 'अधूरा चित्र' तथा 'हार'— 'यात्रा' से ही ली गई हैं। 'स्वप्न' 'पिकनिक' की पहली कहानी है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, विगत दो-तीन वर्षों में लेखिका-श्री साहित्य-सृजन की अन्य प्रवृत्तियों की ओर भी आकृष्ट रहीं। 'पीड़ा की खोज' (उपन्यास) पारिवारिक चिन्ताओं के कारण कई बार बढ़-बढ़ कर रुक गया। साधारण परिस्थितियों में तो वह अब तक समाप्त होकर पाठकों के हाथों में पहुँच चुका होता। फिर भी समय समय पर 'पीड़ा की खोज' के जिन परिच्छेदों को मुझे लेखिका महोदया के श्रीमुख से सुनने का अवसर मिला है, उनके आधार पर मेरी धारणा है कि 'पीड़ा की खोज', हिन्दी-उपन्यास-क्षेत्र में एक अग्रचरण माना जायेगा। अभिव्यंजना-शैली, वर्ण्य-विषय एवं जीवन-दर्शन, सभी दृष्टियों से वह एक प्रकार से क्रांतिकारी प्रकाशन सिद्ध होगा, इसमें मुझे सन्देह नहीं है।

विगत दो वर्षों से श्री कमला चौधरी, फ़ारस के अमर कवि-दार्शनिक, उमर ख़य्याम की रुबाइयों से विशेष प्रभावित रहीं। प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ने विशेष-अध्ययन, एवं अध्ययन ने रुबाइयों के हिन्दी-अनुवाद का रूप ग्रहण किया। अनुवाद में श्री कमला जी ने फ़िट्ज़_जरेल्ड-कृत अंग्रेज़ी उल्था को ही मुख्यतः आधार बनाया है, यद्यपि कुछ ऐसे स्थलों पर जहां फ़िट्ज़_जरेल्ड की अंग्रेज़ी काव्याभिव्यंजना अस्पष्ट एवं मूल फ़ारसी से अधिक दूर जान पड़ी, उन्होंने मूल फ़ारसी रुबाइयात से भी सहायता ली है। अपने सुदीर्घ प्रवास एवं देशाटन-पर्यटन के पश्चात् जब मैं इस बार मेरठ लौटा तो कहना न होगा, मुझे श्री कमला जी के रुबाइयों के अनुवाद पर कम विस्मय न हुआ। बरसों से उन्होंने अपनी काव्य-रचना-परक वृत्ति को कथा-रचना-कर्म के सम्मुख दबा कर रखा था— मानों वही अवरुद्ध काव्य-निर्झरिणी अब अनुपम उल्लास एवं लास के साथ उमड़ चली होवे।

वास्तव में, इस अनुवाद के मूल में, केवल ख़य्याम की दार्शनिक काव्य-धारा के प्रति श्री कमला जी का उत्कट आकर्षण ही न था। ख़य्याम की रुबाइयों के अनेक हिन्दी रूपान्तर उनके अध्ययन-कक्ष में संग्रहीत थे। यही नहीं उनमें से अनेक अनुवाद हिन्दी-काव्य-जगत में सुविख्यात कविवरों की लेखनी से भी प्रसूत थे। श्री कमला जी ने अपने अनुवाद में ख़य्याम की रुबाइयों की सरल अभिव्यंजना, दार्शनिक प्रांजलता एवं व्यापक संगीत को हिन्दी पद्य में उतारने का एक और प्रयास करने का संकल्प किया। उस संकल्प के लिए उन्होंने किस प्रकार उपयुक्त शब्दावली अथवा यथा-तथ्य भाव-चित्रण की शोध में लम्बे रात्रि-पहर जाग जाग कर बिताये हैं, तथा शारीरिक असमर्थता के कारण सार्वजनिक कार्यों से विवश उपराम के अन्तर्काल को किस प्रकार ख़य्याम की काव्यधारा में निमज्जित कर दिया है, इसके प्रत्यक्ष अनुभव का सौभाग्य मुझे मिला है। अपने स्वभावजन्य संकल्प एवं अनथक परिश्रम से उन्हें अपने कार्य में वांछित सफलता मिली है। कई स्थलों पर तो मुझे लगा कि जिस प्रकार फ़िट्ज़_जरेल्ड ने फ़ारसी से अंग्रेज़ी भाषा में अनूदित करते समय,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ख़य्याम की रुबाइयों में अनेक नवीनताएँ एवं विशेषताएँ उत्पन्न कर दी हैं, श्री कमला चौधरी का अनुवाद भी इसी प्रकार हिन्दी-क्षेत्र में चिरकाल तक स्मरणीय रहेगा। जो पाठक-पाठिकाएँ श्री कमला जी को केवल उनकी कहानियों के माध्यम से ही पहिचानते हैं उन्हें इन 'ख़य्याम की रुबाइयों' पर (जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली हैं) मुझ से कम विस्मय न होगा।

* * * *

'बेल-पत्र' आधुनिक कथाकार-माला की पहली कड़ी है। एक प्रकार से यह योजना हिन्दी-प्रकाशन में निराली एवं अत्याकांक्षी है। स्वयं कलाकारों द्वारा चुनी हुई उनकी सर्वश्रेष्ठ कला-कृतियों को इस प्रकार प्रस्तुत करना कि साधारण पाठक को, कथाकार की रचना-कला एवं व्यक्तित्व के बारे में एक ही स्थान पर आवश्यक एवं निर्देशक सामग्री प्राप्त हो सके, यही इस पुस्तक-माला का उद्देश्य है। न केवल इस समस्त आयोजना में मुझे लेखिका-श्री का पूर्ण सहयोग एवं विश्वास प्राप्त रहा है, वरन् उनकी साहित्यिक-साधना के सुदीर्घ वर्षों में उनके साहित्य एवं व्यक्तित्व को निकटता से अध्ययन करने का सुअवसर भी मुझे प्राप्त रहा है। इसी संबल पर मैंने 'बेलपत्र' के आयोजन का भार स्वीकार करने का साहस किया है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं कहानीकार ['विश्व-दर्शन'-सम्पादक] श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने 'बेल-पत्र' के प्रस्तावना-रूप, अपने विद्वत्तापूर्ण निबन्ध 'आधुनिक हिन्दी-कहानी-साहित्य और श्री कमला चौधरी की कहानी-कला' में लेखिका-श्री की कहानी-लेखन-कला की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि एवं विशद विवेचन देकर अनुगृहीत किया है। उससे जिज्ञासु पाठकों को बहुमूल्य दिशा-निर्देश मिल पायेगा। यहाँ केवल स्वयं श्री कमला चौधरी का अपना अभिमत, उन्हीं के शब्दों में इस संक्षिप्त परिचायिका के उपसंहार के रूप में देना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ने विशेष-अध्ययन, एवं अध्ययन ने रुबाइयों के हिन्दी-अनुवाद का रूप ग्रहण किया। अनुवाद में श्री कमला जी ने फ़िट्ज़्‌जरेल्ड-कृत अंग्रेज़ी उल्था को ही मुख्यतः आधार बनाया है, यद्यपि कुछ ऐसे स्थलों पर जहां फ़िट्ज़्‌जरेल्ड की अंग्रेज़ी काव्याभिव्यंजना अस्पष्ट एवं मूल फ़ारसी से अधिक दूर जान पड़ी, उन्होंने मूल फ़ारसी रुबाइयात से भी सहायता ली है। अपने सुदीर्घ प्रवास एवं देशाटन-पर्यटन के पश्चात् जब मैं इस बार मेरठ लौटा तो कहना न होगा, मुझे श्री कमला जी के रुबाइयों के अनुवाद पर कम विस्मय न हुआ। बरसों से उन्होंने अपनी काव्य-रचना-परक वृत्ति को कथा-रचना-कर्म के सम्मुख दबा कर रखा था— मानों वही अवरुद्ध काव्य-निर्झरिणी अब अनुपम उल्लास एवं लास के साथ उमड़ चली होवे।

वास्तव में, इस अनुवाद के मूल में, केवल ख़य्याम की दार्शनिक काव्य-धारा के प्रति श्री कमला जी का उत्कट आकर्षण ही न था। ख़य्याम की रुबाइयों के अनेक हिन्दी रूपान्तर उनके अध्ययन-कक्ष में संग्रहीत थे। यही नहीं उनमें से अनेक अनुवाद हिन्दी-काव्य-जगत में सुविख्यात कविवरों की लेखनी से भी प्रसूत थे। श्री कमला जी ने अपने अनुवाद में ख़य्याम की रुबाइयों की सरल अभिव्यंजना, दार्शनिक प्रांजलता एवं व्यापक संगीत को हिन्दी पद्य में उतारने का एक और प्रयास करने का संकल्प किया। उस संकल्प के लिए उन्होंने किस प्रकार उपयुक्त शब्दावली अथवा यथा-तथ्य भाव-चित्रण की शोध में लम्बे रात्रि-पहर जाग जाग कर बिताये हैं, तथा शारीरिक असमर्थता के कारण सार्वजनिक कार्यों से विवश उपराम के अन्तर्काल को किस प्रकार ख़य्याम की काव्यधारा में निमज्जित कर दिया है, इसके प्रत्यक्ष अनुभव का सौभाग्य मुझे मिला है। अपने स्वभावजन्य संकल्प एवं अनथक परिश्रम से उन्हें अपने कार्य में वांछित सफलता मिली है। कई स्थलों पर तो मुझे लगा कि जिस प्रकार फ़िट्ज़्‌जरेल्ड ने फ़ारसी से अंग्रेज़ी भाषा में अनूदित करते समय,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ख़य्याम की रुबाइयों में अनेक नवीनताएँ एवं विशेषताएँ उत्पन्न कर दी हैं, श्री कमला चौधरी का अनुवाद भी इसी प्रकार हिन्दी-क्षेत्र में चिरकाल तक स्मरणीय रहेगा। जो पाठक-पाठिकाएँ श्री कमला जी को केवल उनकी कहानियों के माध्यम से ही पहिचानते हैं उन्हें इन 'ख़य्याम की रुबाइयों' पर (जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली हैं) मुझ से कम विस्मय न होगा।

* * * *

'बेल-पत्र' आधुनिक कथाकार-माला की पहली कड़ी है। एक प्रकार से यह योजना हिन्दी-प्रकाशन में निराली एवं अत्याकांक्षी है। स्वयं कलाकारों द्वारा चुनी हुई उनकी सर्वश्रेष्ठ कला-कृतियों को इस प्रकार प्रस्तुत करना कि साधारण पाठक को, कथाकार की रचना-कला एवं व्यक्तित्व के बारे में एक ही स्थान पर आवश्यक एवं निर्देशक सामग्री प्राप्त हो सके, यही इस पुस्तक-माला का उद्देश्य है। न केवल इस समस्त आयोजना में मुझे लेखिका-श्री का पूर्ण सहयोग एवं विश्वास प्राप्त रहा है, वरन् उनकी साहित्यिक-साधना के सुदीर्घ वर्षों में उनके साहित्य एवं व्यक्तित्व को निकटता से अध्ययन करने का सुअवसर भी मुझे प्राप्त रहा है। इसी संबल पर मैंने 'बेलपत्र' के आयोजन का भार स्वीकार करने का साहस किया है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं कहानीकार ['विश्व-दर्शन'-सम्पादक] श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने 'बेल-पत्र' के प्रस्तावना-रूप, अपने विद्वत्तापूर्ण निबन्ध 'आधुनिक हिन्दी-कहानी-साहित्य और श्री कमला चौधरी की कहानी-कला' में लेखिका-श्री की कहानी-लेखन-कला की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि एवं विशद विवेचन देकर अनुगृहीत किया है। उससे जिज्ञासु पाठकों को बहुमूल्य दिशा-निर्देश मिल पायेगा। यहाँ केवल स्वयं श्री कमला चौधरी का अपना अभिमत, उन्हीं के शब्दों में इस संक्षिप्त परिचायिका के उपसंहार के रूप में देना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उचित होगा। वे कहानी क्यों और कैसे लिखती हैं, इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं एक स्थल पर इस प्रकार लिखा है—

"..... कभी भी कोई कहानी मैंने किसी उद्देश्य को सामने रख कर नहीं लिखी है, न कला ही के प्रदर्शन का प्रयास किया है। जो कुछ लिखा है, अपनी अनुभूतियां और हार्दिक प्रेरणा के बल पर लिखा है। साधारण घटनाएं, दृश्य, और बहुधा वाक्य, शब्द तक भावनाओं का बवण्डर-सा मन में उत्पन्न करके मुझे लिखने को विवश कर देते हैं और कहानियों की सृष्टि हो जाती है। मैं विश्लेषण करके स्वयं ही आश्चर्य-चकित होती हूँ, जब मुझे उन घटनाओं और उनके द्वारा मिली हुई प्रेरणा का कोई तारतम्य या सामञ्जस्य नहीं मिलता है......

"......मुझे कुछ लिखना ही चाहिए, इस विचार से भी मैंने कभी कुछ नहीं लिखा है। मन लिखने को विवश करता है, तभी लिखती हूँ ... धारा-प्रवाह की भाँति, विचार और शब्द जो भी मन से उमड़ते चले आते हैं, उन्हें ही एक परिधि में बांध देती हूँ। कुछ ऐसे दायरों में बंध जाते हैं, जिन्हें, 'कहानी' नाम न देकर कोई और नाम भी दिया जा सकता है; किन्तु मैं तो उन्हें 'कहानी' ही कहती हूँ। जिन रचनाओं के किसी कारण-वश क्रम टूट गये और मोह-वश उन्हें मैंने बाद में सम्पूर्ण किया है, उनमें मैंने अपने मन का सन्तोष नहीं पाया है, फिर भी मैंने उन्हें अपनी कहानियों के संग्रहों में सम्मिलित कर दिया है......"

उपरोक्त दोनों अवतरण [जो 'यात्रा' के प्राक्कथन से उद्धृत किये गये हैं] ही, लेखिका की पारदर्शी सच्चाई के द्योतक हैं— तभी तो उनकी कहानियाँ जन-मन को सीधा छू देती हैं। इस लेखन-सत्य में ही लेखिका की कहानी-कला का रहस्य-संकेत पाठक को मिल जायगा।

नववत्सरारम्भ
२००६ विक्रमीय

— लक्ष्मण त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बेल-पत्र

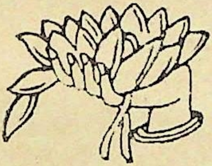

१

'अधूरा चित्र'

[व्याख्या-परिचय]

'बेलपत्र' के त्रिदलों में पहला पत्र 'अधूरा चित्र' है। मूल-कथा पढ़कर (जो इस व्याख्या-परिचय के ठीक बाद में पाठक-पाठिकाएं पढ़ेंगे) सम्भव है अनेक की राय हो कि यह तो शायद आख्यायिका अथवा गल्प का सही शास्त्रीय रूप नहीं है। मेरा विनम्र मत है कि स्वयं लेखिका-श्री ने इसे शास्त्रीय रूप की जानबूझ कर, पर्वाह न करके, लिखा है। इसी लिए 'अधूरा-चित्र' कहानी-कला-कर्त्री की निकटतम रचना बन गई है, चाहे वह शास्त्रीय दृष्टि से एक सम्पूर्ण कहानी न भी बनी हो। आख़िर है तो यह चित्र अधूरा ही न?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और अधूरापन ही तो इसकी एक विशेषता है। सम्भवतया कला की मोहकता, उसकी असम्पूर्णता ही में है।

फिर भी 'अधूरा चित्र' का आधुनिक हिन्दी कहानियों में एक विशिष्ट एवं स्मरणीय स्थान है, इसमें अधिक मतभेद न पाया जायेगा। कारण उसमें भारतीय अथवा पूर्वीय संस्कृति की अन्तर्चेतना अथवा प्रेरणारूपिणी सती नारी के अन्तरतर का अन्तरङ्ग चित्रण है। इसी के चित्रण में पूर्व के दो अमर चितेरों की काव्य-प्रतिभा साकार हुई है एवं कृतकार्य भी। वाल्मीकि के आदि-काव्य 'रामायण' का वह आदि-स्रोत है तथा भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' को रस-स्नात करने वाली यही अमर स्रोतस्विनी है। श्री कमला चौधरी ने महामहिम्ना सीता के बारेमें 'पृथ्वी की पुत्री' नाम्नी एक अन्य आख्यायिका भी लिखी है जो कई वर्ष हुए 'अरावली' मासिक में छपी थी। उस कहानी के शीर्षक 'पृथ्वी की पुत्री' में सीता के चरित्र एवं महत्व दोनों ही मानों सूक्ष्मसात होकर रह गये हैं? संस्कृत वाङ्मय में 'सीता' शब्द का शाब्दिक अर्थ है वह लकीर, जो कुमारिका धरित्री पर हल की तीव्र शलाका खींचती चलती है। पूर्वीय नारी भी उस मूक वेदना की प्रतीकरूपिणी है जो धरती के समान वह चुप-चुप सहती है पर कभी जुबान पर नहीं लाती। उस वेदना का परिणाम है समृद्धि, संस्कृति एवं लोक-कल्याण की वैभवशालिनी फ़सल, जो पूर्व की अपनी विशेषता है। पश्चिम की वैज्ञानिक होड़ एवं अतृप्ति की नींव पर उठी मायाविनी सृष्टि के सम्मुख वह कैसी गंभीर, धीर एवं शांतिदायिनी है। यह सत्य है कि पश्चिम ने पूर्व की इस अन्त-र्चेतना को ग्रहण करने का बहुमुखी प्रयास किया है, पर फिर भी अद्यावधि तो अंग्रेज़ कवि किप्लिंग की पंक्तियों में सत्य का अवशेष रह ही गया है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"पश्चिम पश्चिम है
प्राची फिर भी प्राची है।
दोनों कभी न मिल पायेंगे
यह साँची है॥"*

श्री कमला जी की 'अधूरा चित्र' कृति के समान कृतियाँ ही इस अपार खाई को पाटने के लिये सेतु का कार्य करेंगी, इसमें सन्देह नहीं। १५ अगस्त, १९४७, के पश्चात् जब भारत आज समूचे विश्व के साथ नये सम्पर्क स्थापित करने में स्वतंत्र हो चुका है, ऐसी रचनायें पूर्व एवं पश्चिम क्षेत्रों में अधिकाधिक पढ़ी एवं समझी जानी चाहियें। यदि 'अधूरा चित्र' के अनुवाद यूरोपियन भाषाओं में प्रकाशित होते तो वे विशेष उपयोगी होते। अभी हाल में नई दिल्ली में भारत-स्थित बेल्जियन राजदूत की ओर से एक कला-प्रदर्शिनी की आयोजना की गई थी जिसमें प्रमुख भारतीयों को विशेषतया आमंत्रित किया गया था। यहाँ भारत के संसार भर के कोनों में बिखरे राजदूतावासों के लिए एक अत्यन्त विनम्र एवं उपयोगी सुझाव-संकेत-मात्र हैं।

हाँ, तो श्री कमला जी का 'अधूरा चित्र' भारतीय नारी—पूर्वीय नारी के सूक्ष्म से सूक्ष्म एवं रहस्यमय से रहस्यमय अन्तर के कुछ ऐसे निकटतम चित्र उपस्थित करता है कि देख कर हैरानी होती है कि आख़िर लेखिका ने ऐसी पैनी निरीक्षण-दृष्टि कैसे प्राप्त की। मेरा यहाँ फिर विनम्र मत है कि कमला जी इस चित्रण में केवल इसीलिए सफल हो पाई हैं कि वे एक टिपिकल (उदाहरणीय)

---

*"द ईस्ट इज़ ईस्ट, एन्ड द वेस्ट इज़ वेस्ट
एन्ड द ट्वेन शैल नेवर मीट।" —रड्यार्ड किप्लिंग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भारतीय नारी हैं— उनकी सफलता इस प्रस्तुत कथा-रचना में उनकी कहानी-कला के शास्त्रीय कौशल के कारण उन्हें नहीं मिली है वरन् भारतीय नारी की सहज अन्तर्प्रेरणा ने ही इस विलक्षण आख्यायिका की सृष्टि कर डाली है। एक बार एक वार्त्तालाप के दौरान में एक दिन कमला जी कह गईं कि जब पहले पहल उन्होंने 'अधूरा चित्र' लिखा तो आधे के लगभग लिखे जाने के पश्चात् वे उसकी विलक्षणता से स्वयं स्तब्ध सी रह गईं— और रुक कर सोचने लगीं कि कहीं ऐसा न हो कि अवशेष-भाग उतना सुन्दर न लिखा जाये। फिर भी उन्होंने साहस बटोरा और कहानी पूरी करके आराम की साँस ली। दोहराने और सोचने का धैर्य उनमें अब न रहा। कहानी 'विशाल-भारत' को भेज दी गई। और 'विशाल भारत' के पाठक-पाठिकाओं को, मुझे विश्वास है, कथा का उत्तरार्ध पूर्वार्ध से भी अधिक प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी लगा होगा।

'सीता' जितने निकटत्व से भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं उतने ही सान्निध्य की वे कथाकार-कलाकार की लेखनी अथवा तूलिका से अपेक्षा भी रखती हैं। एक प्रकार से यह चरित्र-चित्रण भारतीय नारी के सम्पूर्ण जीवन एवं उसकी युगों की साधना का चित्रण करना है। और भारतीय नारी रहन-सहन एवं वेश-भूषा में जितनी सरल एवं सीधी-सादी है, अन्तर के रहस्यों में शायद उतनी ही रहस्यमय एवं अनेक स्थलों पर तो दुरूह ही है। श्री कमला जी को इस कठिन कार्य में अपेक्षाकृत रूप से कृतकार्यता मिली है। निवेदन है कि यदि पाठक इस लघु-व्याख्या के बाद दी गई मूल आख्यायिका को इस दृष्टि-कोण-विशेष से पढ़ने का कष्ट करेंगे तो उन्हें कहानी की अन्तर्चेतना तक सीधे एवं तुरन्त जा पहुँचने में सुविधा मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रस्तुत कहानी की कथावस्तु के लिये हमें रामकालीन भारत के सुनहरे प्रांगण में पदार्पण करना होगा— धनुर्धारी श्रीराम अपने बाहुबल से लङ्कापति रावण का गर्व चूर्ण करके विजयी वीर के रूप में अयोध्या लौटे हैं। राजसूय-यज्ञ की तय्यारियाँ पूरे ज़ोर में हैं। देवी सीता अब अशोक-वाटिका में नहीं, महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में एक घनी लता की ओट में पत्थर की शिला पर नत-मस्तक बैठी हैं— एकाग्र मन से कुछ लिख रही हैं। एक अधूरा चित्र उनके सम्मुख है। और यह क्या? अधूरे चित्र के भावों में वे इस प्रकार समा गई हैं कि उन्हें अपनी आँखों से प्रवाहित उन आँसुओं तक की खबर नहीं है, जो लगातार झरने की भाँति झरे चले जा रहे हैं!

और महर्षि तीर्थ-यात्रा से लौटे तो सीता की तन्मयता में बाधा न देकर चुपचाप मनोयोग से चित्र का निरीक्षण करने लगे। चित्र अयोध्यापति रामचन्द्र की विशाल यज्ञशाला का है। देव-दानव, गन्धर्व-किन्नर, आबालवृद्ध नरनारी सभी एकत्रित हैं। सभी की आँखों का मुख्य लक्ष्य है स्वयं सीता की स्वर्ण-प्रतिमा जिसे लेकर दर्शकों में अनन्त कथोपकथन जारी है। यज्ञवेदी के निकट सीता के दोनों पुत्र लव एवं कुश आश्चर्य-चकित से सजल-नेत्र स्वर्ण-प्रतिमा की ओर देख रहे हैं और चारों ओर आकुल दृष्टि फेंककर सभी के मनोभाव पढ़ना चाहते हैं।

आदि-कवि को क्रौञ्च-मिथुन की घटना के पश्चात् सम्भवतया अपने जीवन में यही वैसा ही अन्तर्मथनकारी महाकरुणाप्लावित दृश्य देखने को मिला। उनसे पूछे बिना तब न रहा गया कि सीते! आखिर इतनी अधीरता क्यों— जो इस अधूरे चित्र से पुकार पुकार कर मुखर हो रही है? और सीता की दीर्घकाल से संचित अवरुद्ध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अश्रु धारा मानों बाँध तोड़कर बह निकली। उस तीव्र संतप्त धारा ने ऋषि की अभेद्य स्थितप्रज्ञता की दीवारें भी धराशायी कर डालीं। वे आदिकवि, सरस्वती के वरद पुत्र, रामायण के महागायक, आज अधीर होकर अपने महाकाव्य के अन्तिम परिच्छेदों में परिवर्तन कर डालने को अधीर हो उठे। 'जा सीता ! लेखनी और भोजपत्र तो उठा ला ! मुझे अपने काव्य के कुछ अंशों में परिवर्तन करना है।' और देवी सीता जान गईं — सती की तीव्र अन्तर्दृष्टि से उन्होंने पढ़ लिया ऋषि के झुर्रियों में अंकित मुख-मण्डल की भाव-भंगियों में किस प्रकार का परिवर्तन खेल रहा है जो क्षुब्ध होकर अपनी आजीवन साधना के प्रतिफल अपने महाकाव्य की समरसता को उलट-पलट कर देने को आतुर है। और ऐसा परिवर्तन देवी सीता को स्वीकार न था — अपने अवशेष प्राणों को न्यौछावर करके भी वे कवि की लेखनी को वैसा करते समय कुण्ठित कर देतीं। और बेटी सीता के वात्सल्य ने वाल्मीकि को वैसा करने नहीं दिया। उसके भोले मुँह से— 'आप कुछ भी नहीं समझ सके पिता ! अयोध्यापति की सुकीर्त्ति सूर्य के समान प्रखर है, चरित्र गंगाजल के समान निर्मल एवं पवित्र है, अयोध्यापति के गुणगान में कविता एवं कवि दोनों ही धन्य हुए हैं !' इन शब्दों ने रामायण की अखण्ड प्रेरणागारता की मानो रक्षा कर ली।

फिर भी इस घटना ने वाल्मीकि को अपने महाकाव्य को सम्पूर्ण करने के लिए उचित एवं बलवती प्रेरणा दी जिसकी प्रतीक्षा में वे इधर कई दिनों से थे। अन्त में 'सम्पूर्ण !' कहकर कवि ने साँस ली। और ऋषि सीता को सम्पूर्ण कथा फिर सुनाने का वायदा करके श्रीराम का अश्वमेध-यज्ञ देखने चले गये। चलते समय ऋषि कह गये— "पुत्रि सीते ! मैं अपने काव्य की सफलता की परीक्षा करके ही अब जल-ग्रहण करूँगा, नहीं तो इसे अग्नि-देव को समर्पित कर दूँगा !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लव और कुश की मधुर संगीत-लहरी से अखिल राजसभा मन्त्र-मुग्ध होगई एवं सभी ने अयोध्यापति के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि यज्ञ-कार्य उस दिन स्थगित किया जाये और उन बालकों के कोमल कण्ठ से स्फुटित काव्य-मन्दाकिनी के रसामृत का पान किया जाये। बीस अध्यायों के पश्चात् स्वर-लहरी यकायक रुक गई। अयोध्यापति ने आगे सुनना चाहा किन्तु बालकों ने केवल इतना ही कहा कि अन्तिम अंश अभी गुरुजी ने उन्हें कण्ठाग्र नहीं कराये हैं।

अयोध्यापति के अन्तर में इस काव्य-कथा ने एक बवण्डर उठा दिया। उन्होंने लक्ष्मण के हाथ वाल्मीकि को संदेश भिजवाया कि सीता के जिस अलौकिक सतीत्व-पराक्रम का काव्य में वर्णन किया गया है, कल यज्ञ-मण्डप में वे सीता द्वारा ही उसका प्रमाण चाहते हैं। सीता को विवश गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके यज्ञ-मण्डप में उपस्थित होना पड़ा। वाल्मीकि ने गुरु-गम्भीर स्वर में सीता के सतीत्व की तुमुल घोषणा की। सारी सभा चीख़ उठी कि हम प्रमाण नहीं चाहते! पर सीता ने अपनी धरती माँ को संबोधित करके कहा— 'माँ! अपने पतिव्रत में यदि मैं तेरे ही समान अचल रही हूँ तो तू मेरी मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिये मुझे अपने अङ्क में स्थान दे!' और माता ने अपनी पुत्री को अपनी गोद में छिपा लिया!

कहानी युगों पुरानी है किन्तु जैसे मार्मिक स्पर्श श्री कमला जी ने इस युग-प्राचीन अमर कहानी को दिये हैं, वैसे हिन्दी-कहानी साहित्य में अन्यत्र कठिनाई से मिलेंगे। बिना वाल्मीकि एवं भवभूति की अन्तरात्मा को आत्मसात् किये, यह संभव नहीं था और शायद श्री कमला जी स्वयं नहीं जानतीं कि भारतीय नारी की सहज ज्ञान-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतिभा द्वारा उन्होंने आदिकवि के गूढ़तम रहस्य को अपने इस 'अधूरे चित्र' में सहसा ही पा लिया है और उसे अपनी मर्मस्पर्शिनी लेखनी से काग़ज़ पर उतार कर रख दिया है!

अनेक मर्मस्थल तो कहानी में ऐसे करुण, ऐसे सजल हो उठे हैं कि 'उत्तर-चरित'-कार की सुधि आ जाती है। नारी-हृदय की समस्त आर्द्रता से ये स्थल सजीव एवं रसमय हो उठे हैं— "ओ लव! ओ कुश! तुम दोनों कहाँ हो? देखो गुरुदेव अश्वमेध-यज्ञ देखने जा रहे हैं।" 'दूर से महर्षि ने देखा, बालकों को समीप आता देखकर भी सीता ज़ोर ज़ोर से बोलती ही जा रही है।' सीता ने मानो तारस्वर मे पुकार पुकार के अपने मन की उस घोर व्यथा को दबा दिया जो उसके मन में उस यज्ञ को न देख सकने के कारण उठी होगी जो स्वयं उसी की स्वर्ण-प्रतिमा से प्रतिष्ठित होने जा रहा था।

द्वार पर यात्रा के लिये तत्पर दोनों पुत्रों को छाती से लगाकर सीता फफक कर रो उठी······ स्नेह से सीता की पीठ पर हाथ फेरते हुए मुनि ने आदेश दिया— 'पुत्रि, अब तुम जाओ! संध्या समीप है। पूजा की वेला भी हो आई।"

❀ ❀ ❀ ❀

बालकों के अन्तिम शब्द रामचन्द्र के कानों में गूँजने लगे। वे व्यग्र होकर बोले— 'हनूमान्! मैं एकान्त चाहता हूँ।' हनूमान् ने शयन-कक्ष के पट बन्द कर दिये।

❀ ❀ ❀ ❀

अयोध्या की प्रजा द्वारा ठुकराई हुई अयोध्या की महारानी भले ही फिर अयोध्या के राजा के रनिवास में जाना सहन न करे, पर वाल्मीकि के आश्रम ही के नहीं, हृदय के द्वार भी सदैव उसके लिये खुले हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऐसे ही कितने ही स्थलों पर लेखिका की लेखनी ने करुण-रस का वैसा निर्वाह किया है जैसा कि आज का नीरस-मरु सा होता जाता हिन्दी साहित्य, अपनी महिला-लेखिकाओं से अपेक्षा करता है।

प्रगतिवाद एवं प्रगति-शीलता के इस युग में यदि कुछ पाठक कहानी को युगों पीछे ले जाने वाली, जैसी कि वह है, कह के, उसे प्रतिगामी मानें, तो आश्चर्य क्या है ? इस तीव्र विवाद में पड़ना मेरे बस की बात नहीं है कारण मैं व्यक्तिगत–रूप से साहित्य अथवा कला पर लेबिल लगाये जाने से सहमत नहीं हूँ। मेरे विनम्र विचार से प्रत्येक लेखक को अपनी अभिरुचि एवं अन्तर्प्रेरणा के अनुसार लिखने का अधिकार है, साथ ही उसे बिना किसी पूर्व–धारणा (प्रेजूडिस) के पढ़े और समझे जाने का भी अधिकार प्राप्त है। केवल इतना और निवेदन करके यह लघु व्याख्या-परिचय समाप्त करने की अनुमति चाहूँगा कि आज जब कि सीता, वाल्मीकि एवं राम का यह महान् जनपद न केवल पश्चिमी झंझावातों से आक्रान्त है, वरन् आन्तरिक चरित्र-विघटन एवं नैतिक ह्रास से उसकी युगों की नींवें जब आज हिल उठी हैं, 'अधूरा चित्र' एवं उसकी प्रातःस्मरणीया नायिका सीता के समान पुण्य चरित्र हमारे अन्तःपुरों एवं ग्राम्यगोष्ठों की सांस्कृतिक हरियाली को फिर लौटा लाने में सहायक होंगे। देश के अङ्गभङ्ग एवं युद्धोत्तर आर्थिक संकट से जन्य अन्न-कष्ट एवं वस्त्र-कष्ट, अनाचार एवं अनीति-प्रसार के दम घोंटने वाले वातावरण में, हमारी युगों से अमर संस्कृति, केवल इसी प्रकार की साहित्य-रस–संजीवनी से उबर सकती है। एवमस्तु !

अब पाठक ! मूल-कथा के रसास्वादन से तुम्हें और अधिक रोके रखना, सचमुच ही अन्याय हो जायेगा।

ल० त्रि०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अधूरा चित्र

[१]

महर्षि वाल्मीकि तीर्थ-यात्रा से लौटकर राम-नाम गुणगान करते हुए अपने आश्रम में प्रविष्ट हुए, तो उन्होंने देखा— एक घनी लता की ओट में, पत्थर की शिला पर मस्तक नत किये बैठी सीता आज एकाग्र मन से कुछ लिख रही है। कुतूहलवश मुनि वाल्मीकि उसी ओर को चल दिये और चुपचाप सीता के पीछे खड़े होकर देखने लगे। सीता के हाथ का बनाया हुआ एक अधूरा चित्र उसके सम्मुख है। हाथ में तूलिका लिए और चित्र में आँखें गड़ाये सीता बिल्कुल स्तब्ध बैठी है। उस अधूरे चित्र के भावों में वह इस प्रकार डूब गई है कि उसे अपनी आँखों के आँसुओं की भी खबर नहीं है, जो लगातार झरने की भाँति झर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महर्षि, सीता की तन्मयता में बाधा न देकर मनोयोग से चित्र का निरीक्षण करने लगे। अयोध्या के महाराज रामचन्द्र एक विशाल यज्ञशाला में बैठे यज्ञ कर रहे हैं। उनके बाएँ पार्श्व में सीता की स्वर्ण-प्रतिमा शोभित है और उनके चारों ओर बैठे हुए विद्वान् योगी, मुनि और पुरोहितगण सीता के पक्ष का सम्पूर्ण कार्य उस प्रतिमा द्वारा सम्पन्न करा रहे हैं। देश-देशान्तर के राजे-महाराजे, योगी-मुनि, देवता-राक्षस-वानर, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी आमन्त्रित होकर आये हैं। और इन सब ही की आँखों में वह स्वर्ण-प्रतिमा कुतूहल की वस्तु बन रही है। इसी एक विषय को लेकर मनन, चिन्तन, वार्त्तालाप, वाद-विवाद, काना फूँसी और शोक-उपहास-निन्दा सभी कुछ चल रहे हैं। विशेषकर स्त्रियों में ये कार्य बड़ी प्रबलता से चल रहे हैं। वृद्धा स्त्रियाँ बहू-बेटियों को पुरानी कथा सुनाकर स्वर्ण-प्रतिमा का इतिहास बता रही हैं। रावण के घर रहने के कारण सीता के चरित्र पर एक धोबी ने सन्देह किया था, इसलिए रामचन्द्र ने सीता का परित्याग कर दिया; किन्तु उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। बिना स्त्री के भाग के यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हो सकता, अतः सीता की स्वर्ण-प्रतिमा के साथ वे यज्ञ कर रहे हैं। यज्ञ-वेदी के समीप ही महर्षि वाल्मीकि के साथ सीता के दोनों पुत्र लव और कुश आश्चर्य-चकित-से कभी सजल नेत्रों से उस प्रतिमा को देखते हैं, कभी चारों ओर मुँह घुमाकर आकुल दृष्टि से प्रत्येक के मन का भाव जानने की निष्फल चेष्टा करते हैं। जो काना-फूसी वे सुन रहे हैं, उससे वे दोनों बहुत ही व्याकुल और रुँआसे हो गए हैं। बड़े परिश्रम से वे अपने हृदय के आवेग को रोके हुए इस प्रतीक्षा में हैं कि कब महर्षि अपने आश्रम में पहुँचें और कब वे उनसे अपने मन की शङ्का का समाधान करें। वहाँ का वातावरण उनके हृदय में एक रहस्य का आभास-सा करा रहा है, और वह आभास उनके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोमल-पवित्र हृदय में एक साथ हज़ार बिच्छुओं के दंशन-सी पीड़ा उत्पन्न कर रहा है। अथच धीर-गम्भीर बालक किसी प्रकार वह भारी मानसिक बोझ सँभाले बैठे यज्ञ-उत्सव देख रहे हैं।

अन्तिम दृश्य यज्ञ-मण्डप से दूर वाल्मीकि के आश्रम का है। दोनों बालक एकान्त पाकर, विह्वल हो, मुनि के चरणों पर गिर पड़ते हैं और करुण चीत्कार कर के मानो पूछते हैं— 'बताओ, बताओ गुरुदेव, वह स्वर्ण-प्रतिमा क्या हमारी माता सीता की है? ये हमारे कान क्या अब तक यज्ञ-मण्डप में अपनी ही माता की निन्दा सुन रहे थे? बोलो गुरुदेव, बोलो, आपका महाकाव्य क्या हमारे ही माता-पिता के चरित्र का वर्णन है? वह अग्नि-परीक्षा और यज्ञशाला का यह वातावरण, हे गुरुदेव, इसमें क्या सत्य है और क्या असत्य...... ?'

यहीं पर सीता की तूलिका रुक गई है— मानो उसकी कल्पना-शक्ति ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया हो, मानो वह सीता के मनःताप को अनुभव करके भयभीत हो गई हो! इस ताप को शायद वह और प्रोत्साहन देना अब उचित नहीं समझती; कारण, कहीं सीता के हृदय के दो टुकड़े न हो जायँ! और कल्पना-शक्ति के साथ ही सीता के तन, मन और प्राण इस समय स्तब्ध हो गए हैं। वह ताप अपनी प्रबलता के कारण हृदय के बांध को तोड़कर आँखों की राह बह रहा है। उस प्रबलता की धारा का अनुभव करने तथा उसे रोकने-बाँधने की, सारी क्रियाएँ मानो निष्फल हो रही हैं। सारी शक्तियाँ मानो उसी वेग में बही चली जा रही हैं। तपस्वियों में श्रेष्ठ वैरागी महर्षि वाल्मीकि भी उसी वेग में बहने लगे। किन्तु शीघ्र ही किसी प्रकार अपने को सँभालकर उन्होंने सीता को उबारने की चेष्टा की। बोले— 'पुत्रि सीते, इस प्रकार अधीर होकर यह कैसा चित्र बना रही हो?'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चौंककर सीता ने तूलिका हाथ से दूर फेंक दी और वाल्मीकि के चरणों पर गिरकर और भी विह्वल हो उठी। आशीष देते हुए मुनि ने सीता को उठाकर खड़ा किया और उसके मुँह की ओर देखा। उसकी हिरणी-सी काली आँखों में से अब भी संतप्त अश्रु धारा गति की सीमा का उल्लङ्घन कर इस तरह बह रही थी मानो वह किसी प्रकार रुकना ही न चाहती हो। उसके गौर मुख पर छाई आरक्तता साफ़ बता रही थी कि यह क्रम न जाने कब से जारी है। सीता की उस समय की करुण-मूर्ति और उसके हृदय की वेदनाओं का वह मार्मिक चित्र देखकर आदि-कवि वाल्मीकि भी उस समय सीता को सान्त्वना देने के लिए वाणी और शब्दों का अभाव-सा अनुभव करने लगे। वे सीता का मस्तक अपने हृदय से लगाकर वार्धक्य से काँपता हुआ अपना हाथ सीता के सिर पर फेरने लगे, जैसे अपने हृदय के सम्पूर्ण वात्सल्य से वे सीता के सर्वाङ्ग को नहलाकर उसके मन की सारी व्यथा, सारा सन्ताप, धो देंगे।

सामने चमकते प्रातःकाल के सूर्य ने अपनी एक किरण महर्षि के मुख पर डालकर देखा— उनकी श्वेत पलकों के बीच में जल-कण छलछला आए हैं। सूर्य स्तब्ध देखता रह गया, किन्तु उस वृद्ध हृदय की सम्राज्ञी भक्ति-देवी त्रस्त हो उठीं। उन्होंने सरस्वती का आँचल झकझोर कर कहा— 'यह मूक रहने का अवसर नहीं है शारदे, शीघ्र अपनी प्रेरणा से काम लो, अन्यथा महा अनर्थ होना चाहता है। मेरा तो अस्तित्व ही मिटना चाहता है। मैं तेरी मनुहार करती हूँ, देवि!' वाणी ने भक्ति की यह मनुहार तो स्वीकार कर ली, किन्तु वह सोचने लगी— 'अयोध्या-पति के अनन्य भक्त महाकवि के मन में आज अपने इष्टदेव के प्रति किंचित् विरसता उत्पन्न हुई है और मेरी सामर्थ्य कवि के हृदयगत भावों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को सुसज्जित शब्दों का बाना पहनाने तक ही सीमित है, उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करना या उनमें परिवर्तन करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है।'

वाणी की प्रेरणा से कवि स्वतः ही बोल उठे— 'सीते, अयोध्या-पति ने तुम्हारे साथ अन्याय किया है''''' अभी वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि तड़पकर सीता ने अपने हाथ से महर्षि का मुख बन्द कर दिया। (महर्षि अपना वाक्य पूरा न कर पाए कि 'वे तेरे प्रति कितने कठोर बन गये हैं। पुरुष-हृदय नारी के मन को समझने में असमर्थ है, फिर भी मैं आज बहुत-कुछ अनुभव कर रहा हूँ। मैं इसे सहन नहीं कर सकूँगा पुत्रि, मेरा कवि होना व्यर्थ होगा यदि मैंने अपने महाकाव्य में तुम्हारी इस पीड़ा का वर्णन न किया।') सीता का हाथ छुड़ाते हुए कवि बोले— 'जाओ सीता, मेरी लेखनी और भोज-पत्र तो ले आओ। मुझे अपने काव्य के कुछ अंश बदलने हैं।'

सीता वात्सल्य की भीख-सी माँगती हुई वाल्मीकि के हृदय से और भी अधिक चिपट कर चीख उठी— 'आप कुछ भी नहीं समझ सके, पिता! अयोध्यापति की सुकीर्ति सूर्य के समान प्रखर है, उनका चरित्र गङ्गाजल के समान निर्मल और पवित्र है। अयोध्यापति का हृदय जिस प्रकार दया के प्रति उदार और कोमल है, कर्त्तव्य के प्रति उतना ही विशाल और कठोर है। गुरु, उनकी कर्मनिष्ठा अपार है, अद्‌भुत है और है समुद्र के समान गहन। अयोध्यापति के गुण-गान करने में ही वाणी की महिमा है, उसी में कविता और कवि दोनों धन्य हैं। मुझे क्षमा करो, पिता! मेरे आँसुओं के कारण आज आपके मुख से स्नेह के कुछ अपशब्द निकल गये।' फिर महर्षि को झकझोरते हुए सीता ने ऐसे भावों की सरिता-सी बहा दी, मानो वह आनन्द से उतावली हो रही हो। भक्ति-देवी उस शुभ वेला पर सीता के प्रति कृतज्ञ हो उठीं।

18599

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२]

अबोध बालिका के समान, जो माता के शरीर से चिपट कर दुलार से मातृत्व पर विजय पा ले, उसी प्रकार माया-मोह से रहित उस तपस्वी हृदय पर सीता ने भी विजय पा ली। तपस्वी का क्रोध तो शान्त हो गया, परन्तु उसके स्थान पर वात्सल्यमयी एक पीड़ा का प्रादुर्भाव हो गया। सीता ने महर्षि के हृदय पर से उस पीड़ा को दूर करने के विचार से आँखों में प्रसन्नता भरकर हँसते हुए कहा— 'एक सुख-संवाद मिला है, पिता! मैं तो बहुत उत्सुकता से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी।'

सीता की चेष्टा व्यर्थ नहीं गई। महर्षि की सजल आँखें भक्ति और आनन्द की आभा से उद्दीप्त हो उठीं। वे बोले— 'कैसा सुख-संवाद है? क्या अयोध्यापति का सुख-समाचार मिला है?'

'हाँ पिता, अयोध्यापति अश्वमेध-यज्ञ कर रहे हैं। आपके लिए निमन्त्रण आया है।'

हर्ष से महर्षि अपने महाकाव्य के राम-यश-वर्णन वाले प्रकरण का एक श्लोक गाने लगे और सीता भी उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर दुगुने उत्साह से गाती हुई अपनी तूलिका और चित्र उठाकर एक ओर भाग गई। महर्षि ओज-भरे स्वर से गाते हुए अपनी कुटी में रामायण खोलकर बैठ गये। लव और कुश महर्षि को आया जानकर भागे हुए आये और चरण-स्पर्श कर प्रणाम किया। महर्षि ने आशीष देकर उन्हें समीप बिठा लिया और रामायण कंठाग्र कराने लगे। किन्तु आज महर्षि अपने काव्य-रस में पूर्णतः तन्मय नहीं हो सके। वे अनुभव करने लगे— सीता ने उनके स्वर में जो स्वर मिलाकर गाया था, ऐसा जान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पड़ता था मानो उसका सम्पूर्ण हृदय उस स्वर के साथ बाहर निकला आ रहा है। और वह अधूरा चित्र !

वाल्मीकि चिन्ता में डूब गए। दोनों बालकों को उन्होंने बाहर जाकर खेलने की आज्ञा दे दी। प्रबल इच्छा होते हुए भी बालक इस समय गुरु के मनोभाव को जानकर अश्वमेध-यज्ञ में जाने की बात नहीं पूछ सके।

[३]

दोपहर के भोजन के निमित्त सीता जल से धोये हुए स्वच्छ कन्द-मूल-फल कदली-पत्र में लिए मुनि की कुटी में उपस्थित हुई। देखा, मुनि लेखनी हाथ में लिये लिखने में व्यस्त हैं। सीता ने आदर और प्रतिष्ठा के साथ मूल-फल मुनि के सम्मुख रखकर श्रद्धायुक्त मृदु स्वर में कहा— 'भोजन पा लें, पिता !' संकेत से सीता को समीप बैठने को कह कर अस्फुट वाणी में मुनि बोले— 'आज मेरा निराहार व्रत है, सीते !' और मुनि उसी प्रकार व्यग्रता से लेखनी चलाने लगे।

मौन बैठी सीता पाँव के अँगूठे के नख से धरती खोदती हुई सोचने लगी— 'पिता ने आज व्रत क्यों किया ? आज मेरे कारण कवि के पुनीत और कोमल हृदय को ज़रूर कोई ठेस लगी है। वह मन-ही-मन लज्जित होने लगी। गुरुदेव ने उसका चित्र भी तो देख लिया है !' इसी तरह सोचते-सोचते बहुत सा समय व्यतीत हो गया।

थोड़ी देर बाद लेखनी एक ओर रख दीर्घ निश्वास लेकर महर्षि स्वतः कह उठे— 'सम्पूर्ण !' सीता सहसा चौंक उठी। हाथ जोड़कर उसने प्रश्न किया— 'क्या सम्पूर्ण, पिता ? क्या आपने अयोध्यापति के पवित्र चरित्र की कथा सम्पूर्ण कर ली ? पिता, मुझे उसे सुनने की प्रबल इच्छा है।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आसन से उठते हुए महर्षि बोले— 'हाँ पुत्रि, मेरा काव्य आज सम्पूर्ण हो गया है। किन्तु पुत्रि, तुम्हें सुनाने का अभी समय नहीं है। शीघ्र ही लव और कुश को बुलाकर मेरी यात्रा की तैयारी कर दो। अयोध्यापति द्वारा सम्पन्न होनेवाले अश्वमेध-यज्ञ को देखने की मेरी प्रबल इच्छा है।'

सीता पाषाण की प्रतिमा की भाँति स्तब्ध खड़ी रह गई, जैसे उसमें कोई गति ही शेष न रह गई हो और अवाक् रह गए मुनि वाल्मीकि। उनके अश्वमेध-यज्ञ देखने जाने की बात से सीता के हृदय में किस प्रकार का आघात पहुँचा, यह जानने के लिए मुनि ने एक जिज्ञासापूर्ण दृष्टि सीता के अन्तर में डाली। उन्हें लगा, 'अयोध्यापति की यह परम साध्वी स्त्री सीता आज उनकी उस पुनीत योजना में सम्मिलित होने की अधिकारिणी नहीं है! आज यह पति-परायणा, पति के दर्शनों से भी वंचिता है! आज अयोध्या की स्वामिनी अयोध्या की प्रजा द्वारा ठुकराई जाकर निर्वासिता है!' पर अधिक देर तक वाल्मीकि सीता के अन्तर में छिपे उस गहन-गम्भीर भाव-पारावार का भली भाँति निरीक्षण नहीं कर सके। सीता ने तुरन्त ही अपने आपको सँभाल लिया और मुनि का आदेश पालन करने के लिए विद्युत्-गति से भाग चली। अपने स्वर को पूरी गति पर पहुँचाकर वह चिल्लाने लगी— 'ओ लव, ओ कुश, तुम दोनों कहाँ हो? शीघ्र इधर आओ। देखो, गुरुदेव अश्वमेध-यज्ञ देखने जा रहे हैं। शीघ्र आओ, बालको; देर हो रही है। पिता तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

दूर से महर्षि ने देखा, बालकों को समीप आता देखकर भी सीता ज़ोर-ज़ोर से बोलती ही जा रही है। महर्षि जिज्ञासा और विश्लेषण की बात भूल गए। कवियों में महाकवि और तपस्वियों में तपोश्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाल्मीकि ने उस नारी-हृदय की वेदना के प्रति नतमस्तक होकर मन-ही-मन कहा— 'सीते, तुम धन्य हो!'

कुछ ही क्षण बाद बालकों को यात्रा के लिए तैयार कर और अपने को प्रकृतिस्थ कर सीता मुनि के सम्मुख उपस्थित हुई और हाथ जोड़कर बोली— 'पिता, आपका व्रत कब समाप्त होगा ? क्या आप निराहार ही यात्रा करेंगे ?' गम्भीरता से मुनि ने कहा— 'पुत्रि सीते, मैं अपने काव्य की परीक्षा करना चाहता हूँ। अब तो मैं इसकी सफलता का निर्णय करके ही जल ग्रहण करूँगा, ऐसा मेरा प्रण है। और यदि मैं इस में असफल हुआ, तो इसे अग्निदेव को समर्पित कर दूँगा।'

सीता ने देखा, अन्तिम वाक्य कहते-कहते मुनि कुछ उत्तेजित और कुछ क्रोधित-से हो उठे हैं। तेज से उनका मुख रक्त-वर्ण हो गया है और आँखें उद्दीप्त हो उठी हैं। उनमें से एक प्रकार की दृढ़ता का प्रकाश निकल रहा था। सीता के मन पर आतंक सा छा गया। 'पिता किस प्रकार की परीक्षा लेना चाहते हैं,' यह पूछने का उसे साहस ही नहीं हुआ। मुनि आशीर्वाद देकर चलने को प्रस्तुत हो गए। सीता ने मुनि के चरणों पर मस्तक रख कर प्रणाम करते हुए धीरे से कहा— 'पिता, अयोध्यापति के चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन कीजिएगा और उनकी थाती, ये दोनों बालक, उन्हें सौंप दीजिएगा।' इतना कहते-कहते सीता का गला भर आया।

द्वार पर यात्रा के लिए तैयार खड़े, दोनों पुत्रों को छाती से लगाकर सीता फफक कर रो उठी। हृदय का सन्ताप मातृ-वात्सल्य के रूप में आँखों से फूटकर बहने लगा। स्नेह से सीता की पीठ पर हाथ फेरते हुए मुनि ने आदेश दिया— 'पुत्रि, अब तुम जाओ। सन्ध्या समीप आ रही है। पूजा की वेला भी हो आई।' बार-बार बालकों का मुख चूम कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीता आँखें पोंछती हुई आश्रम की ओर लौट चली और आर्द्र कण्ठ तथा नयनों से महर्षि दोनों बालकों के साथ रामायण के श्लोक गाते हुए जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाने लगे।

[४]

यज्ञ-भूमि अयोध्या से भी सौगुनी सुन्दर, एक विशाल नगरी के रूप में सुसज्जित थी। आज उस नगरी का प्रातः और भी महत्वपूर्ण और चमत्कृत हो उठा था। सारे नगर का जनसमाज आज यज्ञ ही की नहीं, अपनी दैनिक दिनचर्या तक की बात भूलकर जहाँ-तहाँ चित्र-लिखित-सा खड़ा अपने कानों द्वारा अलौकिक संगीत-सुधा का पान कर रहा था। यहाँ तक कि अयोध्यापति भी एकाग्र मन से यज्ञ नहीं कर सके। चारों ओर से उमड़ती हुई जो मधुर संगीत-लहरी बढ़ी चली आ रही थी, सारे समाज की भाँति उनका चित्त भी उसी में डूबने-उतराने लगा। पुरोहितगण मन्त्र उच्चारण करना भूल गए। रामचन्द्र आहुति का पात्र हाथ ही में लिए उठ खड़े हुए। कदली-पत्र से सुसज्जित वातायन में से झाँककर उन्होंने देखा— साक्षात् कामदेव के अवतार-से दो बालक वीणा पर अपना मधुर स्वर झंकृत करते उसी ओर बढ़े चले आ रहे हैं और उनके पीछे-पीछे अपार जन-समुदाय उस संगीत-लहरी में डूबता-उतराता चला आ रहा है। राजा रामचन्द्र की दृष्टि बालकों की छवि का आभास पाकर मुग्ध हो गई। उस छवि में न जाने कैसा आकर्षण था कि उनका हृदय एकबारगी ही उन बालकों की ओर खिंचने सा लगा। वह यज्ञ-जैसे महत्वपूर्ण अनुष्ठान को भूलकर उन्हें देखने को खड़े हो गये।

भाई की यह दशा देखकर लक्ष्मण ने समीप आकर उनकी तन्मयता भंग की— 'महाराज, कल सन्ध्या समय यज्ञशाला में महर्षि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाल्मीकि का शुभागमन हुआ है। ये दोनों बालक उनके शिष्य हैं। महर्षि ने एक महाकाव्य की रचना की है। उनकी आज्ञा से बालक उसी काव्य को चारों ओर घूम-घूमकर यज्ञ में आए अतिथियों को सुना रहे हैं। महर्षि वाल्मीकि कुछ अस्वस्थ हैं, इस कारण वे आज यज्ञ-मण्डप में उपस्थित नहीं हो सके। वे अतिथि-गृह में विश्राम कर रहे हैं।'

महाराजा रामचन्द्र ने वशिष्ठ मुनि तथा यज्ञ-वेदी पर बैठे हुए अन्य सारे मुनियों को सम्बोधित करके कहा— 'आज्ञा हो तो आज यज्ञ-कार्य स्थगित कर महर्षि की काव्य-कला का और इन प्यारे बालकों के कोमल कण्ठ से स्फुटित हुई संगीत-मन्दाकिनी के रसामृत का पान किया जाय।' प्रसन्न वदन से वहाँ एकत्रित सारे राजे-महाराजे और मुनियों ने राजा के प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

लक्ष्मण से बालकों को उनके पास भेजने का संकेत कर अस्वस्थ से रामचन्द्र शयन-कक्ष में चले गये।

बालकों के मुख से वाल्मीकि-काव्य के बीस अध्याय सुनकर अयोध्यापति ने बालकों से अन्तिम अंश सुनने की आकांक्षा प्रकट की। बालकों ने रामचन्द्र को स्नेह में ओत-प्रोत कर देनेवाली मृदुल वाणी में उत्तर दिया— 'गुरुदेव ने अभी काव्य के अन्तिम अंश हमें कण्ठाग्र नहीं कराए हैं।' रामचन्द्र जो सत्रह सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ उन्हें देना चाहते थे, बालकों ने नम्रतापूर्वक यह कहकर उन्हें लेने से इन्कार कर दिया— 'हम वन के फल-मूल पर निर्वाह करनेवाली वनवासिनी सीता के पुत्र हैं। ये स्वर्ण-मुद्राएँ हमारे किस काम की?' और पृथ्वी पर माथा टेककर, रामचन्द्र को प्रणाम कर, दोनों बालक वाल्मीकि के समीप चले गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बालकों के अन्तिम शब्द रामचन्द्र के कानों में गूँजने लगे। वे व्यग्र होकर बोले— 'हनूमान्, मैं एकान्त चाहता हूँ।' हनूमान् ने शयन-कक्ष के पट बन्द कर दिये और द्वार पर प्रतिहारी के आसन पर आकर बैठ गये।

कुछ समय उपरान्त राजा रामचन्द्र ने एक पत्र लेकर लक्ष्मण को महर्षि वाल्मीकि के समीप भेजा। पत्र पढ़कर मुनि पुलकित हो उठे और बोले— 'लक्ष्मण, अयोध्यापति ने लिखा है, मैंने अपने काव्य में सीता के जिस सतीत्व के पराक्रम का वर्णन किया है, कल यज्ञ-मण्डप में वे सीता द्वारा उसी का प्रमाण चाहते हैं। लक्ष्मण, तुम तुरन्त एक द्रुतगामी रथ की व्यवस्था करो, जिससे मैं शीघ्र-से-शीघ्र सीता को यहाँ ला सकूँ। और अयोध्या के महाराज से कह देना कि वे सारी अयोध्या की प्रजा, अपने सारे मानव-समाज, वानर-समाज, राक्षस-समाज, और सारे देव-समाज को भी एकत्रित करें। सब के सामने सीता प्रमाण देंगी।'

यह कहकर मुनि ने आश्रम के लिए प्रस्थान किया और लक्ष्मण प्रणाम करके, भाई के समीप मुनि की आज्ञा सुनाने चले गए।

आश्रम में पहुँचकर मुनि ने देखा— मलिन वेश में, आँखें बन्द किए, समाधिस्थ-सी बैठी सीता साधना में रत है। दिव्य दृष्टि से मुनि ने जाना— सीता ने निराहार रहकर तप द्वारा अपने प्राण छोड़ने का निश्चय किया है। उत्तेजना और आज्ञा-युक्त शब्दों से मुनि ने सीता की साधना भङ्ग की— 'उठो सीते, रामचन्द्र भरे समाज के बीच में तुम्हारे सतीत्व का प्रमाण चाहते हैं। तुम्हें अपने सतीत्व का प्रमाण देना ही होगा। देवि, चलो, अयोध्यापति का रथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चौंककर मुनि को प्रणाम करते हुए सीता ने कहा— 'किन्तु पिता, अग्नि-परीक्षा के उपरान्त सीता को अब फिर किसी प्रकार का प्रमाण देने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। आपकी दया से मैं माता के कर्त्तव्य से उऋण हो गई। अतएव अब मेरी प्राण रखने की अनिवार्यता भी समाप्त हो गई। आप बालकों को उनके पिता को सौंप कर मेरी ओर से क्षमा माँग लें। उनकी इस अन्तिम आज्ञा का पालन मैं अब नहीं कर सकूँगी।'

आग्रहपूर्वक वाल्मीकि बोले— 'नहीं सीते, तुम्हें चलना ही होगा। यह तुम्हारी परीक्षा नहीं वाल्मीकि के तप की परीक्षा है, वाल्मीकि-रामायण की परीक्षा है। स्वाभिमान की वेदना को मैं जानता हूँ, किन्तु मेरे लिए तुम्हें उस पीड़ा को, जैसे भी हो, सहना ही होगा। अयोध्या की प्रजा द्वारा ठुकराई हुई अयोध्या की महारानी भले ही फिर अयोध्या के राजा के रनिवास में जाना सहन न करे, पर वाल्मीकि के आश्रम ही के नहीं, हृदय के द्वार भी सदैव उसके लिए खुले हैं। पुत्रि, तुम्हारे इस कष्ट-सहन से वाल्मीकि और वाल्मीकि का महाकाव्य धन्य हो जायगा!'

सीता अब और कुछ न कह सकी। कृतज्ञता के भार से दबी-सी वह रथ पर बैठ गई और मन ही मन मुनि को धन्यवाद देने लगी, जिनके द्वारा फिर उसे आर्यपुत्र के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होने जा रहा था।

[५]

प्रातःवेला में जब यज्ञ-मण्डप में बहुत बड़ी सभा एकत्रित हो गई, देवलोक से सारे देवता और गन्धर्व आदि भी आ गए, राजा रामचन्द्र आकर यज्ञ-वेदी पर बैठे। इस समय सभा में एक क्षणिक-सा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुतूहल होकर फिर गहरी स्तब्धता छा गई। सारे जन-समुदाय की आँखें द्वार की ओर चली गईं। सब ने देखा— तपस्वियों के शिरोमणि महाकवि वाल्मीकि एक हाथ में रुद्राक्ष की माला और दूसरे में गंगाजली लिए चले आ रहे हैं। उनके पीछे पवित्रता की साक्षात् प्रतिमा-सी सीता वल्कल धारे, मस्तक नीचा किए, धीरे-धीरे चली आ रही है। उसके मुख की कान्ति को सतीत्व का सत्य द्विगुणित कर रहा है। उसे देखकर सारे उपस्थित व्यक्तियों के हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठे। सब ने सीता को मन ही मन प्रणाम किया। अयोध्यापति राजा रामचन्द्र मुख नीचा कर भूमि निहारने लगे। उन्हें मुनि के स्वागत में खड़े होकर प्रणाम करने का भी भान नहीं रहा।

उनके समीप आकर घनघोर गर्जना-सी करते हुए हाथ ऊपर उठा कर महर्षि वाल्मीकि ने कहा— 'महापराक्रमी, महाबलशाली, गौरव-शाली त्रिलोक के शिरोमणि रामचन्द्र, तुमने अपयश के भय से परम सती सीता का गर्भावस्था में परित्याग किया था और उसकी अग्नि-परीक्षा ले चुकने के बाद भी आज तुम इस विशाल समाज के बीच में उसके सतीत्व का प्रमाण चाहते हो। मैं गंगाजली हाथ में लेकर सीता के सतीत्व का प्रमाण देता हूँ। मैंने घोर तपस्या की है, किन्तु मेरे अनन्त काल की सारी तपस्या तराजू के एक पलड़े में रख दी जाय और एक में सीता का सतीत्व, तो सीता ही का पलड़ा भारी रहेगा। यदि इस वचन में किंचित् भी असत्य या अतिशयोक्ति हो, तो मेरी आज तक की तपस्या का सारा फल नष्ट हो जाय; मेरी साधना भ्रष्ट हो जाय; जिस पवित्र जल को लेकर मैं यह सौगन्ध खा रहा हूँ, उस जल की धारा को मस्तक पर धारण करने वाले शंकर मुझे अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से भस्म कर दें!'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सारी सभा में साधुवाद का नाद गूँज उठा— और विह्वल-से रामचन्द्र मुनि के चरणों में गिरकर बोले— 'देव मुझे क्षमा करो!'

'कल्याण हो!' कह मुनि ने सीता की ओर देखकर कहा— 'पुत्रि, तुम्हें प्रमाण-स्वरूप जो-कुछ कहना हो, कहो।' वाल्मीकि की इस आज्ञा से लक्ष्मण का मन बिलख उठा। उन्होंने चाहा कि दौड़कर सीता के चरण पकड़ लें और कहें— माता अब क्षमा करो! माता कौशल्या ने चाहा कि भीड़ को चीरती हुई जाकर, कुल को उज्ज्वल करनेवाली पुत्र-वधू को हृदय से लगा लें। अयोध्या की प्रजा चीखने को हुई कि उसे अपनी महारानी से सतीत्व का प्रमाण नहीं चाहिये; उसका अपराध क्षमा हो। पर सीता ने किसी को पलक मारने का अवकाश नहीं दिया और मन ही मन रामचन्द्र को प्रणाम कर पृथ्वी को सम्बोधित करके बोली— 'माता, अपने पतिव्रत में यदि मैं तेरे ही समान अचल रही हूँ, तो तू मेरी लज्जा और मर्यादा को अचल रखने के लिये मुझे अपने भीतर स्थान दे।'

भयंकर गर्जना के साथ पृथ्वी फटी और उसमें से एक दिव्य सिंहासन प्रकट हुआ। देवी पृथ्वी ने स्वयं सीता को उठाकर उस दिव्य सिंहासन पर बिठा लिया और वह सिंहासन पृथ्वी में चला गया। सारे देव, नर, किन्नर, वानर और महान् शक्तिशाली रामचन्द्र भयभीत से देखते रह गए सीता के प्रचण्ड सतीत्व-पराक्रम की उस महिमा को!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२

'स्वप्न'

[व्याख्या-परिचय]

'वेलपत्र' का दूसरा दल 'स्वप्न' है। श्रीमती कमला चौधरी द्वारा रचित कहानियों में इस कहानी पर भी काफ़ी चर्चा हुई है और प्रो० ललितकिशोरसिंह ने श्री 'प्रेमचन्द' द्वारा सम्पादित मासिक 'हंस'* में इस पर एक विशद विवेचना भी लिखी है। स्वतन्त्र निवेदन करने से पूर्व, इसीलिये उक्त समीक्षा यहाँ ज्यों की त्यों उद्धृत की जा रही है :—

* 'नीर-क्षीर'; पृष्ठ ४४८—४५१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"श्रीमती कमलादेवी चौधरी को कहानी लिखने में बड़ी सफलता मिली है। इसमें संदेह नहीं कि उनकी कृतियाँ उच्चकोटि की हैं। पर 'विशाल-भारत' में प्रकाशित उनकी 'स्वप्न' शीर्षक कहानी में कुछ ऐसी खूबियाँ हैं, जो विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती हैं।

'स्वप्न' का उद्देश्य क्या है, यह गुरु (बैरिस्टर दीक्षित) के अन्तिम पत्र से स्पष्ट हो जाता है। 'प्रवृत्तियों के दमन करने से नहीं, बल्कि उन्हें आध्यात्मिक रूप में परिवर्त्तित करने से ही वास्तविक शान्ति की प्राप्ति होगी।' इस वाक्य की सत्यता को मनोविज्ञान के आधुनिक पण्डितों ने भली भाँति समझा है। इसमें सन्देह नहीं कि संसार में विचरने वालों के लिए यही एक मार्ग है। इसी तत्त्व का परिपाक 'स्वप्न' में बड़े सुचारु रूप से हुआ है। श्रीमती चौधरी जी ने बैरिस्टर दीक्षित और सुरीला— इन दो चरित्रों की सृष्टि करके, दोनों के पारस्परिक संघर्ष से ही इस चिरन्तन सत्य पर प्रकाश डाला है।

बैरिस्टर दीक्षित विधुर थे और सुरीला थी विधवा। दोनों ही के सामने प्रवृत्तियों के दमन की समस्या थी। बैरिस्टर दीक्षित की समस्या उनके निजी भावों से पैदा हुई थी। सुरीला की समस्या सामाजिक रूढ़ि ने पैदा की थी। प्रवृत्तियों से लड़ने के लिए दोनों ने दो मार्ग ग्रहण किये। बैरिस्टर दीक्षित ने उन बाल-बच्चों की मोह-ममता भी छोड़ दी जिनके हित के लिये दूसरा विवाह नहीं करने का संकल्प उन्होंने किया था। सुरीला उस पिता की ममता भी न छोड़ सकी, जो उसे अपने आप से अलग रखना चाहता था। एक का मार्ग था 'संन्यास', दूसरे का मार्ग था 'भक्ति'।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बैरिस्टर दीक्षित नई रोशनी के व्यक्ति थे। ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। विलायत की सैर कर चुके थे। उन पर पाश्चात्य जीवन की छाप पड़ चुकी थी। हिन्दुस्तान की प्राचीन प्रथा के अनुसार विवाह-सम्बन्ध परिवार-परिवार का होता है और पत्नी परिवार का ही एक अङ्ग होती है। किन्तु पाश्चात्य देश के लिए नवीन प्रथा के अनुसार विवाह-सम्बन्ध व्यक्ति-व्यक्ति का होता है और पत्नी केवल पति के लिए ही होती है; इसी से पति-पत्नी के सम्बन्ध में भावुकता और आदर्शवादिता का अंश अधिक रहता है। अस्तु, भावुक बैरिस्टर दीक्षित ने पत्नी की अन्तिम प्रार्थना का मूल्य बहुत अधिक समझा और विवाह न करने का संकल्प कर लिया। विवाह न किया, तो न सही। वे जिस नई रोशनी के समाज में जीवन व्यतीत करते थे, उसमें बिना किसी विघ्न-बाधा के स्वाभाविक प्रवृत्तियों की तृप्ति के प्रचुर साधन मौजूद थे। पर वे पुराने संस्कार को दबा न सके। विवाह न करने का तात्पर्य है, पर-स्त्री से किसी प्रकार का भी सम्पर्क न रखना— यही पुराना संस्कार है। बस, इन्हीं नये और पुराने संस्कारों का संघर्ष उनके मस्तिष्क में आरम्भ हुआ। जब उनका संकल्प इस संघर्ष को न दबा सका और प्रवृत्तियाँ उनके मस्तिष्क को व्यथित और रुग्ण बनाने लगीं, तब वे समाज और परिवार छोड़ कर भाग निकले— संन्यास का मार्ग पकड़ा। जब उन्हें विश्वास हो गया कि उन्होंने प्रवृत्तियों की जड़ खोद डाली, तो वे फिर समाज-सेवा के उद्देश्य से संसार में उतरे। यह उनकी आत्म-प्रतारणा थी। संन्यास से बहुधा ऐसी ही आत्म-प्रतारणा पैदा हुआ करती है। प्रवृत्तियाँ ऐसी चाणक्य-क्रिया पर प्रायः उपहास ही करती हैं। बैरिस्टर दीक्षित गुरु के रूप में, इसी आत्म-प्रतारणा के साथ, आश्रम में थे जब सुरीला से उनका साक्षात् हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुरीला विधवा थी। उसके मन में नई और पुरानी संस्कृतियों का संघर्ष न था। वह अपने वैधव्य को एक दैवी घटना— विधाता का विधान— मानकर ही चली थी। अपनी स्वाभाविक आकांक्षाओं का उपयोग उसने कृष्ण की उपासना में किया। शायद मीरा का आदर्श उसके सामने हो। इससे उसकी प्रवृत्तियों को प्रसार का क्षेत्र मिला; उनका विष जाता रहा; वे काल्पनिक जगत में विलीन हो गईं। उसकी उपासना का साधन थी काव्यकला। कला प्रवृत्तियों के उद्धरण का बड़ा ही सफल साधन है। इसी मार्ग पर चल कर वह अपने पतित पिता की सेवा और उनके जीवन का यथा-शक्ति नियमन किया करती थी। वही सुरीला अपने हिताकांक्षी पिता द्वारा महात्मा दीक्षित के आश्रम में पहुँचाई गई।

यदि शेखर न होता तो गुरु की आत्म-प्रतारणा प्रस्फुटित न होती। शेखर और सुरीला की प्रवृत्तियों का कलुष, कला के अनुशीलन से दूर हो चुका था। पर इसे न तो सुरीला के पिता ने समझा और न गुरु ने समझा। सुरीला के पिता अपने प्रवृत्तियों के जाल में फँस कर पतित हो चुके थे; इससे सामान्य मनुष्य की शक्ति पर से उनका विश्वास उठ गया था। महात्मा ने कठिन तपस्या द्वारा अपनी प्रवृत्तियों को अपने जानते निर्मूल किया था; इससे तरुण शेखर पर उनका विश्वास न था।

सुरीला में रस था। उसका चित्त पतित पिता की सेवा के लिये आकुल था। यह नीरस संन्यास का आश्रम उसे जेल सा मालूम होता था। वह उस आश्रम में निश्चिन्त न रह सकती, यदि शेखर के रूप में उसे मरुभूमि में रस का कुण्ड न मिल जाता। दोनों ही कवि थे, इसी से दोनों में आध्यात्मिक आकर्षण हुआ। दोनों साथ-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथ सुख का जीवन बिताने लगे। पर इस पारस्परिक आकर्षण में गुरु को इन दोनों के लिये ख़तरा नज़र आया। यहीं से गुरु की छिपी हुई आत्म-प्रतारणा क्रियाशील हुई। उन्होंने इनकी रक्षा के लिए ही इन दोनों का सम्बन्ध बड़ी निर्दयता से तोड़ देने की सोची और शेखर को आश्रम से दूर जाकर साधना करने का आदेश दिया। इस आदेश की जड़ में जो ईर्ष्या छिपी थी, उसे गुरु ताड़ न सके। गुरु सुरीला को धोखा देना नहीं चाहते थे; वे अपने आपको धोखा दे रहे थे।

'शेखर और सुरीला में कैसा प्रेम है? अब दोनों एक दूसरे से जुदा होंगे— शायद सदा के लिए। दोनों के हृदय की अभी क्या दशा होगी!' शायद ये सारी बातें गुरु के मस्तिष्क में अप्रकट रूप से घूम रहीं थीं। शेखर, सुरीला और गुरु, इन तीनों के लिए यह परिस्थिति चरम-संकट की थी। गुरु ने कठिन तपस्या द्वारा ऐसे भावों को केवल रुद्ध कर रखा था। वस्तुतः उनके 'पूर्व-संस्कार' निर्मूल न हुए थे, केवल अन्तर्जगत के बाहरी-कोष को त्याग कर भीतर के कोष में जा छिपे थे। अनुकूल परिस्थिति पाकर वे संस्कार बाहर के कोष पर दबाव डालने लगे। उसी दबाव का फल था गुरु का अन्तिम आदेश। ऐसी परिस्थिति में, जब छिपे हुए संस्कार और साधना के अवरोध में पारस्परिक उत्पीड़न चल रहा था, अचेतनावस्था में चैतन्य-अवरोध के दुर्बल होते ही पूर्व-संस्कार स्वप्न के रूप में प्रकट हुआ। इस संस्कार-प्रसूत स्वप्न का असर चेतनावस्था में भी रहा और गुरु ने यन्त्र-चालित की भाँति सुरीला का हाथ पकड़ा। जिस संस्कार ने छिपे-छिपे भीतर से दबाव डालकर गुरु से शेखर के प्रति निष्ठुर आदेश दिलाया था, उसी ने गुरु को सुरीला का हाथ पकड़ने के लिए प्रेरित किया। जिस संस्कार को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुरीला विधवा थी। उसके मन में नई और पुरानी संस्कृतियों का संघर्ष न था। वह अपने वैधव्य को एक दैवी घटना— विधाता का विधान— मानकर ही चली थी। अपनी स्वाभाविक आकांक्षाओं का उपयोग उसने कृष्ण की उपासना में किया। शायद मीरा का आदर्श उसके सामने हो। इससे उसकी प्रवृत्तियों को प्रसार का क्षेत्र मिला; उनका विष जाता रहा; वे काल्पनिक जगत में विलीन हो गईं। उसकी उपासना का साधन थी काव्यकला। कला प्रवृत्तियों के उद्धरण का बड़ा ही सफल साधन है। इसी मार्ग पर चल कर वह अपने पतित पिता की सेवा और उनके जीवन का यथा-शक्ति नियमन किया करती थी। वही सुरीला अपने हिताकांक्षी पिता द्वारा महात्मा दीक्षित के आश्रम में पहुँचाई गई।

यदि शेखर न होता तो गुरु की आत्म-प्रतारणा प्रस्फुटित न होती। शेखर और सुरीला की प्रवृत्तियों का कलुष, कला के अनुशीलन से दूर हो चुका था। पर इसे न तो सुरीला के पिता ने समझा और न गुरु ने समझा। सुरीला के पिता अपने प्रवृत्तियों के जाल में फँस कर पतित हो चुके थे; इससे सामान्य मनुष्य की शक्ति पर से उनका विश्वास उठ गया था। महात्मा ने कठिन तपस्या द्वारा अपनी प्रवृत्तियों को अपने जानते निर्मूल किया था; इससे तरुण शेखर पर उनका विश्वास न था।

सुरीला में रस था। उसका चित्त पतित पिता की सेवा के लिये आकुल था। यह नीरस संन्यास का आश्रम उसे जेल सा मालूम होता था। वह उस आश्रम में निश्चिन्त न रह सकती, यदि शेखर के रूप में उसे मरुभूमि में रस का कुण्ड न मिल जाता। दोनों ही कवि थे, इसी से दोनों में आध्यात्मिक आकर्षण हुआ। दोनों साथ-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथ सुख का जीवन बिताने लगे। पर इस पारस्परिक आकर्षण में गुरु को इन दोनों के लिये ख़तरा नज़र आया। यहीं से गुरु की छिपी हुई आत्म-प्रतारणा क्रियाशील हुई। उन्होंने इनकी रक्षा के लिए ही इन दोनों का सम्बन्ध बड़ी निर्दयता से तोड़ देने की सोची और शेखर को आश्रम से दूर जाकर साधना करने का आदेश दिया। इस आदेश की जड़ में जो ईर्ष्या छिपी थी, उसे गुरु ताड़ न सके। गुरु सुरीला को धोखा देना नहीं चाहते थे; वे अपने आपको धोखा दे रहे थे।

'शेखर और सुरीला में कैसा प्रेम है? अब दोनों एक दूसरे से जुदा होंगे— शायद सदा के लिए। दोनों के हृदय की अभी क्या दशा होगी!' शायद ये सारी बातें गुरु के मस्तिष्क में अप्रकट रूप से घूम रहीं थीं। शेखर, सुरीला और गुरु, इन तीनों के लिए यह परिस्थिति चरम-संकट की थी। गुरु ने कठिन तपस्या द्वारा ऐसे भावों को केवल रुद्ध कर रखा था। वस्तुतः उनके 'पूर्व-संस्कार' निर्मूल न हुए थे, केवल अन्तर्जगत के बाहरी कोष को त्याग कर भीतर के कोष में जा छिपे थे। अनुकूल परिस्थिति पाकर वे संस्कार बाहर के कोष पर दबाव डालने लगे। उसी दबाव का फल था गुरु का अन्तिम आदेश। ऐसी परिस्थिति में, जब छिपे हुए संस्कार और साधना के अवरोध में पारस्परिक उत्पीड़न चल रहा था, अचेतनावस्था में चैतन्य-अवरोध के दुर्बल होते ही पूर्व-संस्कार स्वप्न के रूप में प्रकट हुआ। इस संस्कार-प्रसूत स्वप्न का असर चेतनावस्था में भी रहा और गुरु ने यन्त्र-चालित की भाँति सुरीला का हाथ पकड़ा। जिस संस्कार ने छिपे-छिपे भीतर से दबाव डालकर गुरु से शेखर के प्रति निष्ठुर आदेश दिलाया था, उसी ने गुरु को सुरीला का हाथ पकड़ने के लिए प्रेरित किया। जिस संस्कार को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुरीला विधवा थी। उसके मन में नई और पुरानी संस्कृतियों का संघर्ष न था। वह अपने वैधव्य को एक दैवी घटना— विधाता का विधान— मानकर ही चली थी। अपनी स्वाभाविक आकांक्षाओं का उपयोग उसने कृष्ण की उपासना में किया। शायद मीरा का आदर्श उसके सामने हो। इससे उसकी प्रवृत्तियों को प्रसार का क्षेत्र मिला; उनका विष जाता रहा; वे काल्पनिक जगत में विलीन हो गईं। उसकी उपासना का साधन थी काव्यकला। कला प्रवृत्तियों के उद्धरण का बड़ा ही सफल साधन है। इसी मार्ग पर चल कर वह अपने पतित पिता की सेवा और उनके जीवन का यथा-शक्ति नियमन किया करती थी। वही सुरीला अपने हिताकांक्षी पिता द्वारा महात्मा दीक्षित के आश्रम में पहुँचाई गई।

यदि शेखर न होता तो गुरु की आत्म-प्रतारणा प्रस्फुटित न होती। शेखर और सुरीला की प्रवृत्तियों का कलुष, कला के अनुशीलन से दूर हो चुका था। पर इसे न तो सुरीला के पिता ने समझा और न गुरु ने समझा। सुरीला के पिता अपने प्रवृत्तियों के जाल में फँस कर पतित हो चुके थे; इससे सामान्य मनुष्य की शक्ति पर से उनका विश्वास उठ गया था। महात्मा ने कठिन तपस्या द्वारा अपनी प्रवृत्तियों को अपने जानते निर्मूल किया था; इससे तरुण शेखर पर उनका विश्वास न था।

सुरीला में रस था। उसका चित्त पतित पिता की सेवा के लिये आकुल था। यह नीरस संन्यास का आश्रम उसे जेल सा मालूम होता था। वह उस आश्रम में निश्चिन्त न रह सकती, यदि शेखर के रूप में उसे मरुभूमि में रस का कुण्ड न मिल जाता। दोनों ही कवि थे, इसी से दोनों में आध्यात्मिक आकर्षण हुआ। दोनों साथ-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथ सुख का जीवन बिताने लगे। पर इस पारस्परिक आकर्षण में गुरु को इन दोनों के लिये खतरा नज़र आया। यहीं से गुरु की छिपी हुई आत्म-प्रतारणा क्रियाशील हुई। उन्होंने इनकी रक्षा के लिए ही इन दोनों का सम्बन्ध बड़ी निर्दयता से तोड़ देने की सोची और शेखर को आश्रम से दूर जाकर साधना करने का आदेश दिया। इस आदेश की जड़ में जो ईर्ष्या छिपी थी, उसे गुरु ताड़ न सके। गुरु सुरीला को धोखा देना नहीं चाहते थे; वे अपने आपको धोखा दे रहे थे।

'शेखर और सुरीला में कैसा प्रेम है ? अब दोनों एक दूसरे से जुदा होंगे— शायद सदा के लिए। दोनों के हृदय की अभी क्या दशा होगी !' शायद ये सारी बातें गुरु के मस्तिष्क में अप्रकट रूप से घूम रहीं थीं। शेखर, सुरीला और गुरु, इन तीनों के लिए यह परिस्थिति चरम-संकट की थी। गुरु ने कठिन तपस्या द्वारा ऐसे भावों को केवल रुद्ध कर रखा था। वस्तुतः उनके 'पूर्व-संस्कार' निर्मूल न हुए थे, केवल अन्तर्जगत के बाहरी कोष को त्याग कर भीतर के कोष में जा छिपे थे। अनुकूल परिस्थिति पाकर वे संस्कार बाहर के कोष पर दबाव डालने लगे। उसी दबाव का फल था गुरु का अन्तिम आदेश। ऐसी परिस्थिति में, जब छिपे हुए संस्कार और साधना के अवरोध में पारस्परिक उत्पीड़न चल रहा था, अचेतनावस्था में चैतन्य-अवरोध के दुर्बल होते ही पूर्व-संस्कार स्वप्न के रूप में प्रकट हुआ। इस संस्कार-प्रसूत स्वप्न का असर चेतनावस्था में भी रहा और गुरु ने यन्त्र-चालित की भाँति सुरीला का हाथ पकड़ा। जिस संस्कार ने छिपे-छिपे भीतर से दबाव डालकर गुरु से शेखर के प्रति निष्ठुर आदेश दिलाया था, उसी ने गुरु को सुरीला का हाथ पकड़ने के लिए प्रेरित किया। जिस संस्कार को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु अपने खयाल में निर्मूल कर चुके थे, उसकी इस बाह्य-क्रिया को देखकर गुरु की आँखें खुलीं। उन्होंने समझा कि अब तक वे अपने-आपको धोखा दे रहे थे। उन्होंने शेखर और सुरीला के सामने हार मानी और अन्तिम पत्र में अपना भ्रम स्वीकार किया।

'स्वप्न' का यही मनोवैज्ञानिक आधार जान पड़ता है। इस छोटी-सी कहानी में केवल मानवीय प्रवृत्तियों की क्रीड़ा ही नहीं दिखाई गई है, बल्कि अन्तर्जगत के अन्धेरे कोनों में भी प्रकाश पहुँचाया गया है। स्वाभाविक प्रवृत्तियों को जो शैतान समझकर मारने की चेष्टा करता है, वह उन्हें मार नहीं सकता। सिर्फ़ उन्हें मन के आभ्यन्तरिक कोष में ढकेल देता है। वे प्रवृत्तियाँ समाज और संकल्प के अवरोध से बाहर तो नहीं निकल सकती हैं, पर भीतर छिपे-छिपे अपना काम करती रहती हैं। उनकी गुप्त क्रिया का फल होता है आत्म-प्रतारणा, स्वप्न और अनेक प्रकार के मानसिक विक्षेप। इसी से प्रवृत्तियों के निर्मूल करने का परिणाम व्यक्ति और समाज के लिए प्रायः संकटापन्न ही होता है। किन्तु उच्छृङ्खल प्रवृत्तियाँ भी तो भयंकर रूप धारण कर लेती हैं। फिर शान्ति का उपाय क्या है? उपाय वही है जो धोखा खाकर महात्मा दीक्षित ने जाना। मनुष्य की भयानक से भयानक प्रवृत्तियों का संस्कार कल्पना-जगत् में या समाज में होता है, संकल्प या संन्यास में नहीं। वे कल्पना-जगत में प्रवेश करके भिन्न-भिन्न कलाओं की सृष्टि करती हैं जो समाज को आनन्द देती हैं और वे ही समाज-सेवा के रूप में बदल कर समाज को सुखी करती हैं।

इस मनोवैज्ञानिक तत्त्व की अभिव्यक्ति 'स्वप्न' में मनोरंजक घटना-संस्थान और परिपुष्ट चरित्र-निर्माण द्वारा बड़ी कुशलता से की गई है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस कहानी में सिर्फ़ एक बात कुछ खटकती हुई-सी मालूम होती है— गुरु का छिप कर शेखर और सुरीला की बातें सुनना, किवाड़ की दराज़ में से सुरीला के कमरे में झाँकना और शेखर का चित्र चुराकर ले जाना। इन आचरणों से आत्म-प्रतारणा का विकास कुछ खण्डित हो जाता है। इसके अनुसार गुरु का भ्रम बहुत पहले ही दूर हो जाना चाहिये था। अच्छा तो यह होता कि गुरु की आत्म-प्रतारणा उस क्षण तक अबाध रहती जब उन्होंने सहसा सुरीला का हाथ पकड़ लिया था। उस समय तक उनके सारे आचरण प्रकटरूप में सुरीला की रक्षा की भावना से ही प्रेरित होते। यह कहा जा सकता है कि शेखर का चित्र चुराने में सुरीला की रक्षा की ही भावना थी, पर यह युक्ति उतनी स्पष्ट और सबल नहीं है जितनी सारी कहानी।

मुझे व्यक्तिगत रूप से इस अंश में कुछ त्रुटि जान पड़ती है। यह मेरा भ्रम हो सकता है। यदि यह ठीक भी हो, तो भी इससे कहानी का मूल्य नहीं घटता। मेरी तो कामना है कि आगे श्रीमती चौधरी जी की लेखनी से ऐसी ही कहानियाँ निकलें जिन्हें पढ़कर पाठक अपने आप को और मनुष्यमात्र को अधिक स्पष्टता के साथ देख और समझ सकें।"

प्रोफ़ेसर ललितकिशोरसिंह की उपरोक्त समीक्षा विद्वत्तापूर्ण है एवं उन्होंने कहानी के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में पर्याप्त श्रम भी किया है। उनके कितने ही तथ्यों एवं परिणामों से पाठक सहमति का अनुभव भी करेंगे। निश्चय ही उपरोक्त विश्लेषण से कहानी का मर्म समझने में पर्याप्त सहायता अवश्य मिलती है। किन्तु क्या 'स्वप्न' कहानी पर यही अन्तिम शब्द है?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाठक-महानुभावों ने प्रोफ़ेसर ललितकिशोरसिंह की उक्त समीक्षा को यदि रस लेकर पढ़ा होगा तो उन्हें 'स्वप्न' कहानी निश्चय ही एक पहेली, एक रहस्य सी जान पड़ेगी। किन्तु 'स्वप्न' एक पहेली है भी और नहीं भी है।

जहाँ तक बैरिस्टर दीक्षित ने अपनी मरणासन्न पत्नी की इच्छा का सत्कार करके दूसरा विवाह नहीं किया, विनम्र निवेदन है कि ऐसी घटना में पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव होवे ही, ऐसा अनिवार्य नहीं जान पड़ता। कथा के बैरिस्टर दीक्षित अवश्य विलायत में पढ़े-लिखे थे किन्तु अपढ़ भारतीय किसानों में भी जहाँ पश्चिम की सभ्यता आज भी बहिष्कृत ही है, ऐसे उदाहरण अनेक बार मिलते हैं कि पत्नी ने मरते समय कहा कि दूसरा विवाह न करना और विधुर पति ने उस मरनेवाली की आज्ञा को आजन्म निभाया। सम्राट् शाहजहाँ बाईस लम्बे वर्षों तक विधुर का नीरस जीवन बिता कर, जिस अलौकिक साधना के बल पर, इञ्च-इञ्च, प्रति प्रात, ताज-महल के प्रासाद को उठता हुआ, समान उत्सुकता से देखता रहा, उसकी प्रेरणा निश्चय ही उसने भारतीय सतीत्व से ही पाई होगी। शाहजहाँ पश्चिम से कैसे प्रभावित होता और उस समय यूरोप की सभ्यता पूर्व में फैली ही कब थी? यह सत्य है कि पश्चिमी दाम्पत्य-जीवन एवं पूर्वीय दाम्पत्य-जीवन में अन्तर हैं; किन्तु मूल-भूत रूप से, क्या पश्चिम और क्या पूरब, मानव एवं मानवियाँ सर्वत्र एक समान ही हैं। निष्ठा (लॉयल्टी) किसी देश-विशेष अथवा संस्कृति-विशेष से मर्यादित नहीं की जा सकती।

आज मनोविज्ञान निश्चय ही प्रत्येक कथाकार के लिये अनिवार्य हो उठा है एवं पश्चिम के कथा-लेखक एवं कहानी-कर्त्रियाँ जिस आश्चर्यजनक रूप से उसकी अभिव्यञ्जना अपने उपन्यासों एवं कहानियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में कर रहे हैं, वह एकदम विस्मयकारी है। किन्तु मनोविज्ञान का जो शास्त्रीय रूप पश्चिम के विद्वान प्रतिपादित करते हैं वह समस्त मनोदेश के व्यापारों का केवल एक कक्ष या पक्ष ही है। पतञ्जलि के योग-भाष्य से भी अनेक यूरोपियन मनोवैज्ञानिक अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। किन्तु शास्त्रीय मनोविज्ञान, पश्चिमी एवं पूर्वी दोनों ही, मानव-मन की थाह पाने में असमर्थ रहे हैं— असमर्थ रहेंगे। अभी तो कितनी ही समस्यायें अछूती पड़ी हैं पूर्व-संस्कारों की बात जब हम कहते हैं तो क्या पूर्व-जन्म के संस्कारों का तो हमारा अभिप्राय नहीं हैं, यह रुक कर सोचना पड़ता है। मीरा ने अपने गीत में 'कान्हाजी, म्हारी प्रीत पुरबली जी !' जो कहा तो क्या उसका अर्थ मनोदेश के निम्नतम स्तर-खण्ड में संचित भाव-कोष से ही था ?

आदमी साधना करता है, और ऊँचे चढ़ा चला जाता है। देखा यह भी गया है कि वह मुड़कर नहीं देखता और अपने चिरलक्ष्य को पाकर ही दम लेता है। देखा यह भी गया है कि साधना की उत्तरा-पथ-हिमानी पर उसका पैर फिसला और वह चिर-काल के लिये किसी अवलांश की गोद में समा गया। और देखा यह भी गया है कि आदमी चढ़ा, फिसला, गिरा, आहत हुआ, श्रान्त हुआ, हताश हुआ, फिर उसने मुट्ठियाँ भींचीं, आगे बढ़ा, गिरा, पर गिर गिर कर फिर उठा, और अन्त में अपने ध्येय पर पहुँच कर ही उसने दम लिया।

मानव इतिहास एवं मानव चरित्राङ्कण में इस तीसरी कोटि के मानव का ही बाहुल्य है। बाहुल्य ही नहीं— यही मानव का प्रतिनिधित्व करने वाला सही राजदूत है। कमज़ोर इंसान आगे बढ़ने की चाह रखता है। वह गिर गिरकर उठता है और आगे बढ़ता है। इसी में उसका गौरव है, पौरुष है एवं है उसकी कृतकार्यता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहानीकार के चरित्र-चित्रण का चरम लक्ष्य भी वही है। तभी 'ला मिज़रेब्ल' (अभागे) तथा 'अंकिल टॉम्स केबिन' (टाम काका की कुटिया) संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माने जाते हैं। इस दृष्टि से देखें तो 'स्वप्न' कहानी यद्यपि नेगेटिव (नकारात्मक) प्रभाव तो नहीं रखती किन्तु वह पॉज़िटिव (स्वीकारात्मक) भी न बन पाई।

आज की नवीनता-विमुग्ध दुनियां में यह कहना भी एक प्रकार की नास्तिकता होगी कि फ्रॉयड अथवा काम-सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक गवेषणा करने वाले विद्वानों के अनुसन्धान अभी अपने शैशव-काल में ही हैं। उन्होंने काम एवं नर-नारी के सम्बन्धों को अवश्य ही लोक-जीवन के बीचोंबीच से उठाकर मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में ला स्थापित किया है, किन्तु उनके तथ्यों को पतंजलि के देश-निवासी हम यथातथ्य स्वीकार करलें, यह न शोभनीय ही है, न मानवबुद्धि के लिये आत्मसम्मानपूर्ण ही। 'स्वप्न' हमारे दमनीकृत भावों के प्रतिरूप हैं। सोते में जब हमारा चेतन मन 'असावधान' रहता है, तब वे विचित्र आकृतियाँ धारण करके हम पर आक्रमण करते हैं। यह बात कुछ कुछ तर्कसिद्ध जान पड़ती है किन्तु भारतीय दर्शन के अनुसार तो चेतन मन कभी 'असावधान' होता ही नहीं। आत्मसंकल्प की दृढ़ता जिस प्रकार जागते में अशोभनीय चिन्तनों से आत्मा की निर्मलता की रक्षा करती है, वैसे ही सुषुप्तावस्था में वह स्वप्निल-जगत से भी अशोभनीय आकृतियों को दूर ही रखती है। भय है कि यह मनोवैज्ञानिक चर्चा पाठक के लिये विरस न हो उठे, इसी लिये इत्यलम्।

प्रोफ़ेसर ललितकिशोरसिंह ने कथा का मनोवैज्ञानिक क्रम तो बहुत प्रशंसनीय प्रकार से सुलझा कर रखा है किन्तु कुछ तत्त्वों का वे केवल उल्लेख करके ही रह गये— एक मासिक पत्र के आलोचना-स्तम्भ में संभवतया इससे अधिक स्थान की भी कठिनाई रही हो। उदाहरणार्थ— "शेखर और सुरीला की प्रवृत्तियों का कलुष, कला

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के अनुशीलन से दूर हो चुका था।" शेखर एवं सुरीला दोनों ही अपेक्षाकृत अल्पायु थे— जीवन का अनुभव भी उनका विशेष न था। किन्तु काव्य-कला में दोनों ही आपाद-मस्तक निमग्न थे। प्रकटरूप से उन्होंने जीवन को अभी नारी या पुरुष के रूप में देखना प्रारम्भ ही न किया था। अभी तो वे अपने बालजीवनोपरान्त-काल (एडोलेसेन्स) के रस में, उसके चुने हुए काव्यशास्त्र-विनोद के व्यसन में व्यस्त थे और एक प्रकार से दूसरे किसी भी विषय की ओर ध्यान देने को उन्हें अवकाश ही न था। एडोलेसेन्स (नवयौवन-काल) में अपने प्रिय विषय में समरस लेने वाले एक साथी की सख़्त ज़रूरत रहती है सो सुरीला को शेखर के रूप में एवं शेखर को सुरीला के रूप में मिल ही गया। वे रात दिन नत्थी हुए फिरते थे, यह बात गुरु ने जो देखी तो उन्हें उसमें उन दोनों के लिए संकट दिखाई दिया।

दूसरी ओर गुरु में जीवन के प्रति न वह तरुणों जैसा उल्लास-उत्साह ही था और न वह युवकोचित विस्मय-विमुग्ध-कर काव्य-रंजित दृष्टिकोण ही। वे जान चुके थे कि नारी का आकर्षण पुरुष-मात्र के लिए कितना प्रबल सिद्ध हो सकता है और उसी से बचने की चेष्टा में यहाँ उनका पुनः विवाह न करने का वचन तात्कालिक कारण के रूप में आ उपस्थित होता है। उन्होंने बलपूर्वक समस्त नारी-जाति से दूर रहने की प्रबल चेष्टा की। वे भला कैसे समझ पाते कि शेखर की जीवन के प्रति दृष्टि एवं उनकी अपनी दृष्टि में आकाश-पाताल का अन्तर है। इसी लिए वे भ्रमित होकर शेखर और सुरीला को अलग करने चले और चिरकाल से हठात् जो उन्होंने नारी से दूर रहने की व्यर्थ चेष्टा की थी वास्तविक मनोबल के अभाव में वही स्वप्न के रूप में उन पर आक्रमण करने आई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्यों ही गुरु स्वयं अपनी प्रतारणा के जाल में फँसने जा रहे थे उन्हें समस्त घटनाएँ उनके यथातथ्य रूप में क्षण भर में दिखाई दे गईं और इसीलिए उन्होंने अपने अन्तिम पत्र में शेखर और सुरीला को लिखा कि "मैं भ्रम में था। जिसे अब तक स्वप्न समझा था, वास्तव में हक़ीक़त थी, और जिसे हक़ीक़त समझी थी वही स्वप्न था।"

इस प्रकार 'स्वप्न' एक अत्यन्त प्रभावशाली आख्यायिका है। उसमें कृत्रिम एवं बलात् साधना की निर्मम आलोचना है, स्वस्थ एवं उन्मुक्त मानव प्रेम का साहसिक समर्थन है एवं है संन्यास एवं लोक-संग्रह के बीच में से कल्याण-पथ के आविष्कार की उत्कट अभिलाषा। निश्चय ही श्री कमलाजी ने 'स्वप्न' कहानी लिखकर अपने कथा-टेकनीक को ऐसा घुमाव दिया है कि उनके 'उन्माद' के पाठकों को उसे भलीभाँति ग्रहण करने के लिये यत्न करना होगा। इस दृष्टि से यह अत्यन्त समुचित ही हुआ कि 'स्वप्न' को उनके दूसरे कहानी-संग्रह 'पिकनिक' में प्रथम स्थान मिला। उनके तीसरे कहानी-संग्रह 'यात्रा' में यह टेकनीक और भी निखर उठा है, जैसा कि पाठक 'स्वप्न' के ठीक बाद दी जानेवाली कथा 'हार' में पढ़ेंगे।

काव्य-रचना को जो प्रस्तुत कथा में हठात् साधना से ऊँचा स्थान दिया गया है, उससे रूढ़ि-प्रिय पाठकों के मन को ठेस अवश्य लगेगी। मुझे स्वयं लेखिका-महोदया के नैतिक साहस पर अपनी विशेष प्रिय अंग्रेज़ उपन्यास-लेखिका एथेल मैनिन का स्मरण हो आया। इस दृष्टि से 'स्वप्न' श्री कमला जी की कृतियों में बहुत आशा-उत्तेजक है एवं प्रगति-सूचक भी।

ल० त्रि०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वप्न

[१]

'महात्माजी, सुरीला की जीवन-नौका की पतवार अब मैं आपके हाथों में देता हूँ। आपकी कृपा-दृष्टि के सिवा संसार में इस दुखिया के लिये दूसरा शान्ति का साधन नहीं है।'

'अपनी एकमात्र कन्या को अपने समीप न रखकर आश्रम में छोड़ने के लिये विकल क्यों हो।'

'महात्माजी, कभी आप मेरे मित्र थे, मेरी ज़िन्दगी आपसे छिपी नहीं है। आप महान् आत्मा हैं; आपने अपने जीवन में घोर परिवर्तन कर लिया है— आप तपस्वी हैं। किन्तु मैं— मैं जो आज से बीस वर्ष पहले था, बिल्कुल वही हूँ। केवल इतना अन्तर हुआ है कि जिस दिन से सुरीला विधवा हुई है, मुझे अपने दुर्व्यसन नरकाग्नि के समान जला रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'महात्माजी, मैं महानीच हूँ, पापी हूँ, दुराचारी हूँ, व्यभिचारी हूँ ; किन्तु मेरी पुत्री सुरीला देवी है, लक्ष्मी है, पवित्रता की प्रतिमा है। गुरुदेव, उस पर दया करो। मुझे भय है कि मुझ पामर के दुर्व्यसनों का प्रभाव कहीं उसके पुनीत विचारों को दूषित न कर दे। अब तक वह पूर्णतः संसार के संसर्ग में नहीं आई है। वह कवि है और किसी और लोक में विचरण करती रहती है ; किन्तु नवयौवन का विकास उसे इस पापी संसार से परिचित कराके रहेगा। देव, उसकी पवित्रता की रक्षा करो। वह विधवा है। मैं उसका पतित पिता उसकी आत्मोन्नति का इच्छुक हूँ। मेरी अन्तिम अभिलाषा है, मेरी देवी-समान पुत्री देवी ही बनकर रहे।'

महात्मा ने सुरीला को आश्रम में रखना स्वीकार कर लिया।

(२)

महात्मा कभी बैरिस्टर थे। उनकी स्त्री लक्ष्मी ने अन्तिम समय में कहा था— 'दूसरा विवाह न करना, वरना मेरे बच्चों की दुर्गति हो जायेगी। दूसरी माँ प्यार के बदले इनसे·····

क्रूर काल ने लक्ष्मी को अपना वाक्य पूरा नहीं करने दिया ; किन्तु यह अधूरा वाक्य ही बैरिस्टर दीक्षित के हृदय पर अमर छाप डाल गया। लक्ष्मी की उन्मीलित आँखें जाने कैसी व्यथा छोड़ गईं थीं, वे टूटते हुए शब्द विनय की ऐसी अनन्त सीमा का दिग्दर्शन करा गये थे कि बैरिस्टर दीक्षित ने अनेक विपत्तियों का सामना किया ; किन्तु दूसरा विवाह नहीं किया। उस दिन से उनके कार्यक्रम में बच्चों का लालन-पालन और मृत लक्ष्मी के चित्र का पूजन सम्मिलित हो गया।

स्त्री के देहावसान के समय बैरिस्टर दीक्षित नवयुवक ही थे। नवीन सभ्यता, पश्चिमीय शिक्षा और फैशनेबिल सोसाइटी का रंग उनमें भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्ण मात्रा में व्याप्त था। और शायद उनके वे ही पूर्वसंस्कार चेष्टा करने पर भी उनके मन को चलायमान करते थे। हमेशा उनके हृदय में देवासुर-संग्राम छिड़ा रहता। कितनी ही बार आसुरी वृत्तियों ने अपनी विजय-घोषणा करने का निश्चय कर लिया; लेकिन लक्ष्मी की उन आँखों और शब्दों ने सदा उनकी रक्षा की।

संयम की आराधना-हेतु स्त्री-जाति से सर्वथा दूर रहने का उन्होंने निश्चय किया। उनके कई मित्र ऐसे थे, जिनकी स्त्रियों से भी उनकी काफ़ी घनिष्ठता थी। लक्ष्मी की मृत्यु के बाद उन लोगों ने बैरिस्टर दीक्षित को पूर्ण सहानुभूति के साथ बच्चों के लालन-पालन में सहायता भी दी; किन्तु बैरिस्टर दीक्षित ने उन लोगों की सहानुभूति की ज़रा भी परवा न करके उनसे मिलना-जुलना तक बन्द कर दिया। वे अपने चारों ओर के वायुमण्डल में अब स्त्री के नाम को भी स्थान देना नहीं चाहते थे।

बच्चों के पालनेवाली पुरानी आया से भी कह दिया गया कि अब घर जाओ; तुम्हारी पेंशन प्रतिमास मनीआर्डर द्वारा पहुँचती रहेगी। इस मामले में बैरिस्टर दीक्षित ने न आया के आँसुओं की चिन्ता की, न बच्चों के मानसिक क्लेश की। हाँ, बच्चों को स्वतन्त्रता थी कि जब इच्छा हो, आया के घर जाकर उससे मिल आया करें। उनके अन्य कर्मचारियों में जो सपत्नीक थे, उनके वेतन में वृद्धि के साथ उन्हें आज्ञा हुई कि अलग घर लेकर अपने परिवार को रखें

यहाँ तक कि बैरिस्टर साहब ने किसी स्त्री-मुवक्किल का केस भी लेना छोड़ दिया। अपनी कन्या सुनीता से बोर्डिङ्ग-हाउस में मिलने तक न जाते, क्योंकि मुख्य अध्यापिका से मुलाक़ात किये बिना लड़कियों से मिल सकना बोर्डिङ्ग-हाउस के नियमानुसार सम्भव नहीं था। छुट्टियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में सुनीता का बड़ा भाई उसे लिवा लाता, तभी पिता-पुत्री एक-दूसरे को देख सकते थे।

इस प्रकार अनेक कठिन नियमों के आवरण में वे अपने को छिपाकर रखने लगे।

(३)

बैरिस्टर दीक्षित अपने साथ इतनी सख्ती करने पर भी मानसिक संयम न रख पाते। हर समय मानसिक भावनाओं के साथ उनको घोर युद्ध करना पड़ता। दिन भर किसी प्रकार विभिन्न कार्यों में चित्त को उलझाये रखते; रात में गीता-पाठ के साथ निद्रादेवी का आह्वान करते, फिर भी स्वप्न में अतीत काल के हास-विलास के दृश्य अपनी छाया डाल ही जाते।

श्यामाचरण वकील के यहाँ पार्टी है। कैलाशबिहारी आग़ा की स्त्री रागिणी आज कैसी सज-धजकर आई है। रागिणी के रूप की बराबरी करने वाली फैशनेबिल स्त्री जगत में दूसरी नहीं है। धानी साड़ी मुख पर कैसी खिल रही है।··· ऐसे स्वप्न उनके चित्त को उद्विग्न कर जाते।

बैरिस्टर साहब आफ़िस में क़ानून का अध्ययन कर रहे हैं और बाहर बरामडे में कोई नया मुअक्किल मुहर्रिर से गुफ्तगू करता है, तो बैरिस्टर साहब की चितेरी कल्पना सब कुछ भुलाकर स्त्री के चित्र उनके सम्मुख खींचती। कोई सफेद साड़ी पहने विधवा होगी। पति की सम्पत्ति पर किसी ने अधिकार कर लिया होगा और अब रोटी देना भी अस्वीकार करता होगा। लाचार मुक़दमे की बात सोचकर आई है। ध्वनि से भी स्त्री ही प्रतीत होती है; संकोच से धीरे-धीरे बोल रही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुहर्रिर के द्वारा मशविरा तो दे दूँगा ; किन्तु केस अपने हाथ में नहीं लूँगा। उसी समय मुहर्रिर कमरे में आता, बैरिस्टर साहब की निमग्नता में बाधा पड़ती ; वे कुछ कम्पित हृदय से कल्पनानुसार सुनने की प्रतीक्षा करते। मुहर्रिर कहता, 'छुदम्मीलाल नामक एक मुवक्किल आया है।'

लज्जा और ग्लानि से चित्त चंचल हो उठता। वे सोचते— यह क्या है ? पहले तो मेरी मानसिक स्थिति ऐसी दुर्बल नहीं थी। प्रवृत्तियों के पराजित करने के साधन उल्टे मुझे ही पराजित कर रहे हैं और मानसिक उन्नति के मार्ग से विमुख करके पतन के मार्ग की ओर आकृष्ट करते हैं। क्या उपाय करूँ भगवन्!

(४)

पुत्र-पुत्रियों के कर्तव्य से निवृत्त होकर बैरिस्टर दीक्षित ने सन्यास ले लिया। हिमालय की पहाड़ियों में भ्रमण करते हुए, एक पहुँचे हुए महात्मा से उनका साक्षात् हुआ। उसी दिन वे उनके शिष्य हो गये।

महात्मा वास्तव में एक दिव्य पुरुष थे। संसार से विरक्त होकर वर्षों उन्होंने कठिन तपस्या की थी। बहुत दिनों तक मानव समाज से परे भयानक जंगलों और दुर्गम पहाड़ों में विचरण करते रहे थे ; किन्तु अपनी साधना को सफलीभूत करके अब मानव-समाज के उपकार की कामना से इस ओर आ गये थे। योगिराज की इच्छा एक आश्रम बनाने की थी, जिसमें भटकते हुए प्राणियों को शान्ति और आध्यात्मवाद का अध्ययन करने का अवसर मिले ; साथ ही निर्धनों के लिए वे एक चिकित्सालय भी खोलना चाहते थे। उन्हें अनेक संजीवनी जड़ी-बूटियों का ज्ञान था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बैरिस्टर दीक्षित ने अपनी सम्पत्ति का आधा भाग देकर योगिराज की इच्छा पूरी की और स्वयं भी उनके साथ आश्रम में रह कर सेवा और उपासना में तन्मय हो गये।

योगिराज की कृपादृष्टि से पूर्ण शान्ति भी प्राप्त हुई, और थोड़े ही दिनों में कठिन अभ्यास और तपस्या के द्वारा वे एक महान् तपस्वी बन गये। योगिराज के अनेक शिष्यों में बैरिस्टर दीक्षित का स्थान सर्वप्रथम था। चारों ओर उनकी ख्याति फैल रही थी। उन पर भी लोगों की श्रद्धा-भक्ति उनके गुरु से कम न थी।

योगिराज के शरीर छोड़ देने पर आश्रम ने 'गुरुदेव' के पद के योग्य बैरिस्टर दीक्षित को ही समझा और उसी दिन से उन्हें 'महात्मा' की पदवी भी मिल गई। अब वे बैरिस्टर दीक्षित नहीं, एक प्रसिद्ध महात्मा थे।

(५)

सुरीला को आश्रम की सीढ़ियों पर बिठा कर उसके पिता गुरुदेव के दर्शन करने गये थे। सुरीला सुदूर तक गंगा की उज्ज्वल जलधारा का अवलोकन करती हुई अपने विचारों में निमग्न थी— पिता मुझे संन्यास लिवाना चाहते हैं; कहते हैं, इन महात्मा की कृपा से मुझे कृष्ण भगवान् के दर्शन हो जायँगे, मुझे शान्ति मिलेगी। जिन नटनागर के स्वप्न, मैं अपनी कविताओं में अङ्कित करती रहती हूँ, उनके दर्शन पाने से बढ़ कर और क्या सौभाग्य हो सकता है? किन्तु पिता से विलग होना भी तो आसान नहीं है; और अपने अन्दर अशान्ति तो मुझे कुछ प्रतीत होती नहीं। लोग मुझे दुखिया समझ कर मुझ पर करुणा का भाव दिखलाते हैं, पर मैं तो बहुत सुखी हूँ। पिता मुझे कितना प्यार करते हैं?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे मा नहीं हैं, भाई-बहन भी नहीं हैं, मैं अकेली हूँ ; लेकिन यह अकेलापन अब तक तो कुछ अखरता नहीं है। कितने तो काम हैं, मुझे यह सोचने की फ़ुर्सत ही कब मिलती है कि मैं अकेली हूँ ?

पति के मैंने दर्शन ही नहीं किये। कभी-कभी मन दुखी अवश्य होने लगता है। मेरा विवाह पिता ने इतनी छोटी उम्र में क्यों कर दिया ? विलायत जाते समय पतिदेव मुझसे मिलने आये थे ; पर लज्जावश मैं उनके समीप गई ही नहीं। वे नाराज़ होकर प्रातः ही चले गये, और विदेश ही में उनकी मृत्यु हो गई। यह ख़याल अवश्य हृदय को ठेस पहुँचाता है।

पिता को छोड़ कर मैं यहाँ कैसे रहूँगी। यह आश्रम तो मेरे घर जैसा भी नहीं है। गंगा का किनारा होने से कुछ सुहावना अवश्य जान पड़ता है। मुझे यहाँ फुलवारी लगाने को कहाँ मिलेगी ? कविताएँ भी शायद ही लिख सकूँ। महात्मा की आज्ञा पर ही तो चलना होगा न !

और फिर पिताजी को कितना कष्ट होगा ? अँधियाले ही चाय पीते हैं। कोई नौकर भी इतने सबेरे न उठ सकेगा। और मेरी मैना मुझे न देख कर व्याकुल हो जायगी। मदनगौर बिना मेरे खिलाये आधा चारा भी नहीं खायगा।

कहीं नौकरों ने संध्या समय कबूतरों को बन्द नहीं किया, तो उन्हें बिल्ली खा जायगी। मेरे पीछे मेरी फुलवाड़ी उजड़ जायगी। मेरी सारी चिड़ियाँ मर जायँगी। मिसरानी के बनाये खाने से पिताजी का पेट भी नहीं भरेगा और वे दुबले भी हो जायँगे, खाँसी भी बढ़ जायगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्भव है, हर समय शराब ही पीते रहें। अभी तो मैं बहुत देर तक उन्हें बातों में लगा लेती हूँ, ताश खेलती हूँ ; गाना सुनाती हूँ और संध्या को चिड़ियाखाने की सैर कराती हूँ। फिर संध्या से ही बोतल लेकर बैठ जाया करेंगे। परमात्मा! क्या होगा? मैं तो चुपके से शराब में पानी मिला देती हूँ, मेरे पीछे ख़ालिस शराब की पूरी बोतल ही पी गये, तो फिर मुँह से खून गिरने लगेगा। कुछ भी हो, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मेरे पिता शराब पीते हैं, तो क्या हुआ? उनके बराबर मेरे लिए कौन हो सकता है? कौन मुझे वैसा प्यार करेगा? मैं यहाँ किसी प्रकार भी नहीं रहूँगी; किन्तु पिता को कैसे समझाऊँ? वे नाराज़ हो जायँगे, दुखी होंगे। सोचते-सोचते सुरीला के सुन्दर नेत्रों से बड़े-बड़े मोती-जैसे आँसू टपकने लगे।

महात्मा का शिष्य शेखर स्नान करके आ रहा था। दूर से सुरीला उसे श्वेत संगमरमर की प्रतिमा-सी जान पड़ी। सीढ़ी पर वह ठिठक गया— कोई दुखिया है, रो रही है। उसने मीठी वाणी में पूछा— 'देवी! रोती क्यों हो? क्या मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता हूँ?'

सुरीला पुरुषों के संसर्ग में नहीं रही थी; लेकिन प्रकृति से ही वह निर्भीक थी। लज्जा के वातावरण में वह पली ही न थी। उसने बालकों की भाँति आँसू पोंछते हुए पूछा— 'तुम महात्मा के पुत्र हो?'

'मैं महात्माजी का शिष्य हूँ। वे मुझ पर पुत्र की भाँति ही स्नेह करते हैं।'

'तो तुम कुछ न कर सकोगे; इसी आश्रम के हो न?'

'आश्रमवासी होने से क्या हुआ? कुछ कहो भी तो। सम्भव है, मैं तुम्हारा कुछ उपकार कर सकूँ। हम लोगों का ध्येय ही तो परोपकार है!'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुरीला ने क्षण भर पहले सोची हुई सारी बातें शेखर को सुना दीं और बोली— क्या अब तुम मेरे पिता से सिफ़ारिश कर सकोगे ? यों तो मेरे पिता मेरी प्रत्येक इच्छा पूरी करते हैं ; मगर उनका विचार जम गया है कि इस आश्रम में रहने से मेरा कल्याण होगा।

शेखर ने अत्यन्त मधुर शब्दों में सुरीला के पिता के विचारों का समर्थन किया और अनेक प्रकार से सान्त्वना देते हुए उसने कहा— इसमें क्या हर्ज है ? पिता के आज्ञानुसार कुछ दिन यहाँ रह देखो। यदि मन न लगे, तो चली जाना। यहाँ किसी प्रकार का बन्धन थोड़े ही है। तुम्हारी स्वतन्त्रता में भी बाधा नहीं पड़ेगी। अपने इच्छानुसार कविता भी कर सकोगी, फुलवारी में विचरण भी कर सकोगी। यहाँ शिक्षा आदि के अनेक साधन हैं। चलो तुम्हें यहाँ का पुस्तकालय और चित्रशाला दिखलाऊँ। यहाँ तुम चित्रकला, चिकित्सा, संगीत-कला आदि का भी अध्ययन कर सकती हो।

सुरीला को यह जान कर बहुत सान्त्वना मिली कि शेखर भी कवि है। यहाँ उसे सहानुभूति भी मिल सकती है। शेखर के शब्दों में जाने कैसी मोहनी थी कि सुरीला आश्रम में रहने को तैयार हो गई।

पिता शीघ्र-शीघ्र आने का वादा करके चले गये।

(६)

सुरीला और शेखर में मित्रता हो गई। आश्रम में स्त्री-पुरुषों के परस्पर मिलने-जुलने के लिए कोई ख़ास नियम नहीं था। सब को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। दोनों, आश्रम के कार्य, पूजा-उपासना आदि से निवृत्त होकर कलकल-निनादिनी गंगा के तट पर बैठ कर कविता लिखते; कभी वार्तालाप करते और कभी आध्यात्मवाद का विषय लेकर वाद-विवाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्भव है, हर समय शराब ही पीते रहें। अभी तो मैं बहुत देर तक उन्हें बातों में लगा लेती हूँ, ताश खेलती हूँ; गाना सुनाती हूँ और संध्या को चिड़ियाखाने की सैर कराती हूँ। फिर संध्या से ही बोतल लेकर बैठ जाया करेंगे। परमात्मा! क्या होगा? मैं तो चुपके से शराब में पानी मिला देती हूँ, मेरे पीछे ख़ालिस शराब की पूरी बोतल ही पी गये, तो फिर मुँह से ख़ून गिरने लगेगा। कुछ भी हो, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मेरे पिता शराब पीते हैं, तो क्या हुआ? उनके बराबर मेरे लिए कौन हो सकता है? कौन मुझे वैसा प्यार करेगा? मैं यहाँ किसी प्रकार भी नहीं रहूँगी; किन्तु पिता को कैसे समझाऊँ? वे नाराज़ हो जायँगे, दुखी होंगे। सोचते-सोचते सुरीला के सुन्दर नेत्रों से बड़े-बड़े मोती-जैसे आँसू टपकने लगे।

महात्मा का शिष्य शेखर स्नान करके आ रहा था। दूर से सुरीला उसे श्वेत संगमरमर की प्रतिमा-सी जान पड़ी। सीढ़ी पर वह ठिठक गया— कोई दुखिया है, रो रही है। उसने मीठी वाणी में पूछा— 'देवी! रोती क्यों हो? क्या मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता हूँ?'

सुरीला पुरुषों के संसर्ग में नहीं रही थी; लेकिन प्रकृति से ही वह निर्भीक थी। लज्जा के वातावरण में वह पली ही न थी। उसने बालकों की भाँति आँसू पोंछते हुए पूछा— 'तुम महात्मा के पुत्र हो?'

'मैं महात्माजी का शिष्य हूँ। वे मुझ पर पुत्र की भाँति ही स्नेह करते हैं।'

'तो तुम कुछ न कर सकोगे; इसी आश्रम के हो न?'

'आश्रमवासी होने से क्या हुआ? कुछ कहो भी तो। सम्भव है, मैं तुम्हारा कुछ उपकार कर सकूँ। हम लोगों का ध्येय ही तो परोपकार है!'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुरीला ने क्षण भर पहले सोची हुई सारी बातें शेखर को सुना दीं और बोली— क्या अब तुम मेरे पिता से सिफ़ारिश कर सकोगे ? यों तो मेरे पिता मेरी प्रत्येक इच्छा पूरी करते हैं ; मगर उनका विचार जम गया है कि इस आश्रम में रहने से मेरा कल्याण होगा।

शेखर ने अत्यन्त मधुर शब्दों में सुरीला के पिता के विचारों का समर्थन किया और अनेक प्रकार से सान्त्वना देते हुए उसने कहा— इसमें क्या हर्ज है ? पिता के आज्ञानुसार कुछ दिन यहाँ रह देखो। यदि मन न लगे, तो चली जाना। यहाँ किसी प्रकार का बन्धन थोड़े ही है। तुम्हारी स्वतन्त्रता में भी बाधा नहीं पड़ेगी। अपने इच्छानुसार कविता भी कर सकोगी, फुलवारी में विचरण भी कर सकोगी। यहाँ शिक्षा आदि के अनेक साधन हैं। चलो तुम्हें यहाँ का पुस्तकालय और चित्रशाला दिखलाऊँ। यहाँ तुम चित्रकला, चिकित्सा, संगीत-कला आदि का भी अध्ययन कर सकती हो।

सुरीला को यह जान कर बहुत सान्त्वना मिली कि शेखर भी कवि है। यहाँ उसे सहानुभूति भी मिल सकती है। शेखर के शब्दों में जाने कैसी मोहनी थी कि सुरीला आश्रम में रहने को तैयार हो गई।

पिता शीघ्र-शीघ्र आने का वादा करके चले गये।

(६)

सुरीला और शेखर में मित्रता हो गई। आश्रम में स्त्री-पुरुषों के परस्पर मिलने-जुलने के लिए कोई खास नियम नहीं था। सब को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। दोनों, आश्रम के कार्य, पूजा-उपासना आदि से निवृत्त होकर कलकल-निनादिनी गंगा के तट पर बैठ कर कविता लिखते; कभी वार्तालाप करते और कभी आध्यात्मवाद का विषय लेकर वाद-विवाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करते। दोनों के विचारों में किसी प्रकार की अपवित्रता नहीं थी। वे यथाशक्ति गुरुदेव के बताये मार्ग पर चलते। गुरु के उपदेशानुसार ही अध्ययन, उपासना तथा अभ्यास करते।

किन्तु गुरु को यह मैत्री खटकी। एक नवयुवक और नवयुवती का इस प्रकार हर समय का साथ, एक का दूसरे के प्रति इतना अनुराग, उचित नहीं है। संयम में विघ्न पड़ सकता है। शेखर अभी अभ्यास ही कर रहा है, तपस्वी नहीं बन पाया है, और सुरीला को तो आश्रम में प्रविष्ट हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं। गुरुदेव ने अपने ये विचार किसी पर प्रकट तो नहीं किये; पर इन दोनों पर कड़ी दृष्टि रखना प्रारम्भ कर दिया।

उन्होंने शेखर से कहा— पुत्र, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। भगवान् तुम पर शीघ्र प्रसन्न होंगे। अब वह समय आ गया है कि तुम कुछ दिनों तक एकान्तवास में तपस्या करो। एक सप्ताह बाद तुम्हें एक पहाड़ की कन्दरा में जाना होगा।

शेखर ने मस्तक नत करके गुरुदेव की आज्ञा स्वीकार की। गुरु ने सुरीला को नीचे से बदल कर छत पर अपने कमरे के समीप एक दूसरा स्थान दे दिया। सुरीला के मन में शंका हुई— 'क्या गुरु मेरे ऊपर सन्देह करते हैं?' किन्तु उसने स्वयं ही अपने विचार की निन्दा की और गुरु की श्रद्धा-भक्ति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आने दिया।

उस दिन रजनी दुग्ध-स्नान कर रही थी। उसके शरीर से दुग्ध-धारा ने बह कर सारी प्रकृति को श्वेत बना दिया था। उसी श्वेत वातावरण में हरी घास की सुकोमल शय्या पर बैठे सुरीला और शेखर वार्तालाप कर रहे थे। शेखर ने कहा— सुरीला, गुरुदेव की आज्ञा से अब मैं एक मास के लिए एकान्तवास करने जाऊँगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुरीला पर वज्रपात हुआ। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो हृदय की धड़कन बन्द हुई जाती है। वेदना उसके हृदय को मसलने लगी। वह भयभीत हरिणी की नाईं छलकते आँसुओं से शेखर का मुँह निहारती रह गई।

सुरीला की यह दशा देख कर शेखर का मन भी न जाने कैसा होने लगा; किन्तु उसने हृदय को दृढ़ करके कहा— 'घबराती क्यों हो? शान्ति से चित्त को एकाग्र करके रहो। गुरु के उपदेशों पर मनन करना, तुम्हारा चित्त सावधान हो जायगा।'

सुरीला ने कहा— 'शेखर, तुम चले जाओगे, तो मैं किसी प्रकार भी यहाँ न रह सकूँगी। मुझे पिता के यहाँ पहुँचा दो!'

'नहीं, सुरीला! इतने दिनों के अभ्यास को इस प्रकार न तोड़ो! मैं गुरुदेव से प्रार्थना करूँगा कि वे अब तुम्हें अधिक समय दें। गुरु के उपदेशों से तुम्हें शान्ति मिलेगी।'

घबरा कर सुरीला ने कहा— 'नहीं, शेखर! ऐसा न करना; बल्कि गुरु से कहो कि मुझे भी एकान्तवास की आज्ञा दें।'

'ऐसा तो नहीं हो सकेगा, सुरीला! गुरुदेव तुम्हें एकान्तवास में जाने की आज्ञा नहीं देंगे। अभी तुम उस कठिन तपस्या में सफल न हो सकोगी।'

'तो शेखर! मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मुझे क्षमा करना, शेखर! गुरु से मुझे एक प्रकार का भय लगता है उनसे अधिक मुझे तुम पर...'

बीच ही में बात काट कर शेखर ने ताड़ना के शब्दों में कहा— 'कैसी बातें करती हो, सुरीला! गुरुदेव पर भक्ति करो!'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

काँपते हुए स्वर से सुरीला ने कहा— शेखर ! मैंने अनेक बार देखा है, गुरु छिप कर हम दोनों की बातें सुनते हैं।

'तो दोष क्या है ? हम लोगों पर दृष्टि रखना गुरु का कर्तव्य है।'

सिसकते हुए सुरीला बोली— 'इतना ही नहीं, शेखर ! रात्रि में मुझे कई बार शुबहा हुआ, किवाड़ की दराज़ में से कोई मेरे कमरे में झांकता है। तुमने जो अपना चित्र बना कर मुझे दिया था, वह मेरे कमरे से कोई चुरा कर ले गया। मुझे यह काम गुरु का ही जान पड़ता है। मैं यहां नहीं रहूँगी, या फिर तुम कुछ दिनों बाद जाना।'

सुरीला सिसक-सिसक कर रोने लगी। क्षण भर मौन रहने के बाद उसने शेखर से कहा— 'शेखर ! मेरा मन तुमसे भय नहीं खाता है।'

इस सरलता पर शेखर हँस दिया। और इस समय इस प्रसंग को भुलाने के लिए उसने कहा— 'आओ ! कुछ देर रामायण का पाठ करें।'

(७)

सुरीला रामायण गाने लगी। शेखर आधा लेटा हुआ सुनने लगा। पुष्पवाटिका का मनोरम प्रसंग चल रहा था। दोनों तुलसीदास के भक्तिरस का स्वाद ले रहे थे, रामायण में बिल्कुल तन्मय थे।

और गुरु ? गुरु छत की खिड़की पर आधी रात में दोनों के बीच का भेद लेने बैठे थे। जाग्रत अवस्था में ही गुरु को स्वप्न-सा भान हुआ— यह सुरीला कितनी सुन्दर है, मानों सौन्दर्य स्वयं देवी-रूप में प्रकट हुआ है। रागिनी का रूप इसकी छाया के बराबर भी न था।

गुरु चौंक पड़े। आज वर्षों बाद अतीत-काल की स्मृति क्यों हिलोरें लेने लगी ? 'हरिः ओ३म्' उच्चारण करके गुरु ने आकाश पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हँसते हुए चन्द्रमा को देखा और फिर क्षितिज पर बैठी हुई सुरीला पर दृष्टि डाली। उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानों चन्द्रमा का कुछ भाग टूट कर सुरीला बन गया है। उन्हें प्रतीत होने लगा कि भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की है। सुरीला चन्द्रमा का अंश ही नहीं, रामायण की सीता भी है, विष्णु की लक्ष्मी भी है, कृष्ण की राधिका भी है और कामदेव की सौन्दर्यवती रति भी है। गुरु बेसुध होकर, भक्ति-सागर में डूब कर, राधा, लक्ष्मी, सीता के दर्शनामृत का पान करने लगे।

इस समाधिस्थ अवस्था में कितना समय व्यतीत हो गया, गुरु जान ही न सके। कुक्कुट ने मदमाती बांग से ऊषा के आगमन की सूचना दी, तो शेखर ने कहा— 'सुरीला! उठो! आज आश्रम की धुलाई करने की हम लोगों की पारी है। मैं पानी लाता हूँ, तुम चल कर पहले गुरुदेव का कमरा झाड़ दो।'

गुरु खिड़की पर सर रखे निद्रा में निमग्न थे। यह समय तो उनका वायु-सेवन के लिए आश्रम से बाहर जाने का है। सुरीला झाड़ू लिये, गुरु के जागने की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी रही। गुरु मनोरञ्जक स्वप्न देख रहे थे— वृन्दावन-विजन-वन में चन्द्रदेव पूर्ण कलाओं से शोभायमान हैं। मनोमुग्धकारी रजत-चन्द्रिका विपिन को सौरभ-दान कर रही है और उसी विमल चाँदनी की शय्या पर सौ चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित करने वाले भगवान् कृष्ण दाहिने कर में मुरलिका लिये नृत्य कर रहे हैं, और उनके बायें पार्श्व में प्रियतमा राधिका शोभा पा रही हैं।

अनेक देवताओं के साथ गुरु भी विमान पर बैठे पुष्प-वर्षा कर रहे हैं। भक्त-वत्सल भगवान् कृष्ण ने मुरलिका ऊपर उठा कर गुरु को समीप आने का संकेत किया। भक्ति में उन्मत्त होकर गुरु विमान से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कूद पड़े और भगवान् ने उन्हें अपने में लीन कर लिया। अब भगवान् कृष्ण और गुरु, जुदा नहीं थे।

फिर एक बार राधिका के मुख पर दृष्टि डाल कर मुरलीमनोहर ने कहा— 'प्रिये! संसार में तुम सुरीला थीं और मैं महात्मा था। अभी मृत्यु-लोक में फिर चल कर प्राणियों का उद्धार करना है।'

इतना कह कर भगवान् पूर्ण गति से नृत्य करने लगे। रासलीला समाप्त कर वे राधिका को लेकर फिर संसार में चले आये। अभी पृथ्वी का पूर्णोद्धार नहीं हुआ था।

राधिका बोली— 'प्राणेश! क्या मुझे अभी और विलग रहना होगा? इस बार की जुदाई तो सीता-वनवास से भी अधिक हो गई, देव!'

कृष्ण ने राधिका का आलिंगन कर लिया और बोले— 'नहीं प्रिये! अब हम-तुम साथ रह कर ही पृथ्वी का उद्धार करेंगे।'

जाग कर भी गुरु को चेतना नहीं हुई। उन्मत्त की भांति सुरीला का हाथ पकड़ कर बोले— 'राधिका! प्रिये··

सुरीला गुरु का हाथ झटक कर चीखती हुई भागी— 'मुझे बचाओ, शेखर!'

शेखर जल की बाल्टी लेकर सीढ़ियां पार कर चुका था। यह दृश्य देख कर अप्रतिभ-सा खड़ा रह गया। उसी समय सुरीला बिजली की भाँति टूट कर उसके पैरों के समीप गिर पड़ी। बाल्टी की कोर माथे में घुस गई और खून की धारा बह निकली।

बेसुध-सी सुरीला को गोद में उठा कर शेखर आश्रम से बाहर हो गया। सारे आश्रम में कोलाहल मच गया। घटना का पता लगाने के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिए आश्रमवासी गुरु के समीप गये; लेकिन दरवाज़े बन्द थे। सबों ने समझा, गुरु समाधि में हैं। शेखर ने बिना कुछ कहे ही साथियों से विदा माँग ली।

पिता से चिपट कर सुरीला ख़ूब रोई। पिता भी रोने लगे।

'अच्छा किया, आ गई, सुरीला ! अब मेरा अन्तिम समय निकट जान पड़ता है।'

बात करते-करते उनके मुँह से लाल-लाल रक्त बहने लगा। शेखर उपचार में लग गया। सुरीला और भी बिलख उठी—'मुझे अपने से जुदा करके तुमने अपनी क्या गति करली, पिताजी !'

× × ×

नौकर ने शेखर के नाम एक पत्र लाकर दिया—

'शेखर ! सुरीला ने मेरी आंखें खोल दीं। मैं भ्रम में था। जिसे अब तक स्वप्न समझा था, वास्तव में हक़ीक़त थी, और जिसे हक़ीक़त समझी थी, वही स्वप्न था। मुझे अपने मार्ग का दिग्दर्शन अब हुआ। मैं जाता हूँ और आश्रम का भार तुम दोनों पर छोड़ता हूँ। तुम सुरीला से विवाह कर लो, तुम्हारा कल्याण होगा। मानुषिक प्रेम द्वारा ही तुम्हें दिव्य प्रेम का परिचय मिलेगा। प्रवृत्तियों के दमन करने से नहीं, बल्कि उन्हें आध्यात्मिक रूप में परिवर्तित करने से ही वास्तविक शान्ति की प्राप्ति होगी। यही तुम्हारे गुरु का अन्तिम उपदेश है।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३

'हार'

[व्याख्या-परिचय]

'बेलपत्र' का यह तीसरा एवं अन्तिम दल 'हार' भी पाठक-पाठिकाओं की सेवा में समर्पित है। श्री कमला चौधरी की यह कहानी एक 'समस्या-कहानी' कही जा सकती है। इसकी व्यापक अन्तर्चेतना है 'नारीत्व'— 'नारीत्व' जो नारी में न जाने अन्तरतर के किस कोने में पड़ा रहता है एवं केवल अवसर-विशेष पर ही प्रकट होकर उसके समस्त व्यक्तित्व पर छा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने काव्यों में, एवं उपन्यास-कहानियों में भी, इस तत्व को अपनी विलक्षण मर्मस्पर्शिनी लेखनी से अनेक स्थलों पर बड़ी मार्मिकता से अभिव्यंजित किया है। 'चित्रा' में मानसरोवर के निकट धनुर्धारी पार्थ एवं चित्राङ्गदा की भेंट का दृश्य तो कितने ही पाठक-पाठिकाओं के मानस-पटल पर स्थायी रूप से अङ्कित होगा ही। फिर भी उसका यहाँ संक्षेप में उल्लेख केवल पुनः स्मृत्यर्थ करदूँ।

अपने वनवास-काल में दिव्यास्त्र प्राप्त करने, अर्जुन मानसरोवर के निकट तपस्या करने जाते हैं। मणिपुर के राजा ने शिव की अनन्य उपासना करके एक सन्तान पाई किन्तु वह एक कन्या हुई। उसे राजा ने पुत्ररूप में ही पाला-पोसा— कारण इतनी दीर्घ-साधना के प्रतिफल-रूप भी पुत्र न हुआ, इसमें राजा को अपने इष्टदेव की प्रतिष्ठा की हेठी लगती थी। चित्रा को राजकुमारोचित सभी ज्ञान-विज्ञान में श्रेष्ठतम शिक्षा दी गई। विशेषतया धनुर्विद्या में वह एक प्रकार से अनुपम थी। उसके जीवन की सब से बड़ी साध थी किसी दिन पार्थ को आमने-सामने धनुर्साम्मुख्य में ललकारना। उस दिन जो चित्रा मृगयार्थ मानसरोवर के निकट जा निकली तो उसने देखा कोई पुरुष लापरवाही से रास्ता रोके पड़ा है। धनुष की नोक से चित्रा ने उसे चिताया। पुरुष ने आँखें खोल कर जगाने वाले की ओर इस प्रकार देखा मानों वह एक भुनगा हो और फिर बेफ़िक्री से करवट बदल कर सो गया। पुरुष पार्थ के सिवा कोई और न था। और चित्रा ने अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया कि वह 'नारी' है।

स्वयं श्री कमला जी ने अपने 'पिकनिक' कहानी-संग्रह में एक बहुत मार्मिक आख्यायिका— 'वीणा' नाम से लिखी है। वीणा एक गुणी किन्तु निर्धन कलाकार की इकलौती अनाथ बेटी। किसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शगुन एवं उसके घरवालों ने उसे गृहलक्ष्मी बनाकर विधवा माँ को कृतकृत्य किया । शगुन मालदार घर का लाड़ला बेटा, वीणा की वीणा का भक्त एवं वीणा का भी भक्त । मां, बेटी के अपूर्व सौभाग्य से बाग़-बाग़, पर बेटी अपने कलाकारत्व में इतनी निमग्न कि 'नारीत्व' उससे परास्त— अभिभूत ।

परिणाम उदासीनता, एवं शगुन का विरस होकर उसे उसकी मां के यहां भेज देना । शगुन की एक गुणवती समझदार स्नेहमयी भाभी । उससे जो सब कथा शगुन ने कह सुनाई तो भाभी ने पहले तो वीणा को बुलाने भेजने की बात की किन्तु फिर न जाने क्यों वह उसे लेने न आई । निकट ही शगुन का घर था । वीणा उसे रोज़ भाभी से घुट घुट कर बातचीत करते दूर-से देखती और धीरे-धीरे उसे सन्देह हुआ कि कहीं भाभी ने उसके 'सर्वाधिकार सुरक्षित' पति पर तो दावा करने की नहीं ठानी है ? और जीवन में पहली बार वीणा ने अनुभव किया कि वह 'नारी' है ।

'हार' की नायिका रमला ने बहुत देर में बहुत कुछ खोकर अपने 'नारीत्व' का अनुभव किया । एक अत्यन्त स्नेहशील, दार्शनिक ज़मींदार, विद्वान एवं सहृदय भाई के स्नेह का अवलम्ब पा रमला बड़ी हुई थी और अपने भाई के खान-पान, स्वास्थ्य एवं ज़मींदारी सभी की वह एकमात्र पहरेदार अभिभाविका थी । पर जैसा कि आज से सहस्रों वर्ष पहले तपोवन-वासी ऋषि कण्व ने निःश्वास भर कर कहा था— 'कन्या परकीयो धनः' । अन्त को दार्शनिक भाई के सिर यह वर-मृगया का बोझ एक बोझिल छाया सा फैल गया । रमला ने एक दिन भाई की दुःख-चिन्ता को दूर करने के संकल्प के जोश में किन्हीं रंगपुर के ज़मींदार के विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार करके, अपने स्नेहशील भाई को भी विस्मित कर दिया । कहां शिक्षा, संस्कृति,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कला, दर्शन के बीच पली-विकसी रमला और कहां विलासी, मद्यप, मौजी एवं काहिलवजूद रंगपुर का धनी ज़मींदार ? किन्तु भाई चुप रह गये, यह सोच कर कि आखिर रमला जैसी विवेकशीला युवती ने जब प्रस्ताव के औचित्य को स्वीकारा है तो वे उसके व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य में दख़ल देने वाले कौन ? रमला की प्रसन्नता में उनकी प्रसन्नता जो थी।

रमला संभवतया अपना यह जीवन का सब से महत्वपूर्ण निर्णय, इतनी जल्दी, इतनी सरलता से न कर पाती यदि उसने उसे ज़रा भी अधिक महत्व दिया होता। एक प्रकार से पति के चुनाव का प्रश्न तो उसकी दृष्टि में रत्तीभर भी आवश्यक न था। उसने इस पर विचार करने की मन में आवश्यकता उत्पन्न ही न होने दी। वह हिन्दू नारी है; पति कैसा भी हो, वह उसके साथ निर्वाह कर ही सकती है; और आँख मूंद कर पति की इच्छाओं पर चल सकती है। पति की आज्ञाओं का पालन करना तो स्त्री का धर्म है। पति कैसा ही हो— चरित्रहीन हो, चरित्रवान् हो, इसकी विवेचना करना स्त्री का कर्तव्य नहीं। उसने अपने सम्मुख शिव-पार्वती के विवाह का आदर्श रखा और यथाशक्ति पार्वती के हृदयगत भावों को उसने अपने हृदय में संचित कर लिया।

रमला पति के घर जब गई तो जाने से पहले "उसने पार्वती से श्रद्धा-भक्ति का वरदान मांगा था, और उसी अवलम्ब को लेकर वह पार्वती-पथगामी बनी थी; परन्तु वह अवलम्ब रंगपुर पहुँच कर उसे निर्बल प्रतीत हुआ। मानों वह यथेष्ट नहीं है। वह अवलम्ब केवल सावधान ही करता है, उसमें शायद जब्र करने की शक्ति नहीं है। वह आकर्षण नहीं है, जो विपरीत धारा की ओर से उसे विमुख कर सके। इन विद्रोह के अंकुरों को पूर्णतः निर्मूल करदे।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और विपरीत धारा थी उसकी अपनी शिक्षा एवं संस्कृति— उससे भी बढ़ कर उसके लाड़ले भाई का अनुराग, जिसकी रंगपुर के ज़मींदार के यहां नित्य प्रति अवहेला एवं उपेक्षा केवल इसलिए होती थी कि उन्होंने इतने बड़े ज़मींदार होकर रमला के भाई जैसे एक साधारण हैसियत के ज़मींदार के यहाँ रिश्ता करना मंज़ूर कर लिया। केवल कर्तव्य से प्रेरित पतिभक्ति, मन-वचन एवं कर्म से भाई के प्रति अनुरक्ति को न दवा सकी, न परास्त कर पाई।

कुछ ही काल पति-गृह में रहने के पश्चात् रमला ने अनुभव किया कि "हृदय वैसा निस्पन्द नहीं है, रिक्त नहीं है, और महत्वाकांक्षाओं की ओर से उदासीन नहीं है। विज्ञान की रश्मियाँ स्फुटित होती प्रतीत हुई एवं वे रश्मियां केवल मुग्धा नहीं हैं। उसमें क्या नहीं है? मान, सम्मान, अभिमान — सभी कुछ तो है।

"मन में आज विश्लेषण करने की शक्ति जागृत हो गई है। आकांक्षाएँ अपनी रुचि का प्रदर्शन कराने को विकल हैं। हृदय में 'पति' शब्द के लिये आदर है, पति-सेवा के लिए चाह है, तत्परता है, उसका हृदय पति पर न्यौछावर हो सकता है— कुर्बान हो सकता है। वह पति के लिये प्रेम की मदिरा उत्पन्न कर सकता है; किन्तु पति के मुख से जो मदिरा की गन्ध आती है, उस पर कुर्बान नहीं हो सकता।"

और सीता के प्रति अनसूया के उपदेश को बारम्बार स्मरण करनेवाली एवं पार्वती के तप से निशदिन प्रेरणा ग्रहण करनेवाली रमला अन्त को इस पति-अनुरक्ति के उपक्रम से हताश हो गई। "वह तो अपने जीवन का क्रम पहले ही निश्चित कर चुकी थी। भाई ने व्यर्थ ही उसमें बाधा डालने की चेष्टा की। अब भी क्या बिगड़ा है?" और रमला भाई के यहाँ फिर से अपनी पुरानी 'अभिभावकता' सम्हालने के लिए लौट आई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"भाई ने तुरन्त ही चाबी देकर अपने सर का बोझा उतार सा दिया। ……… रमला सेफ़ की चाबी लेकर हंसती हुई चली गई। उसकी हंसी में विजय का गर्व था– भैया तुमने देख लिया न ! बहन का प्यार, स्नेह, ममता, श्रद्धा-भक्ति और त्याग !"

"कुछ दिन बीतते न बीतते वह विजय-गर्व पराजय में परिणत होने लगा। घर की सारी व्यवस्था को फिर से व्यवस्थित करने के बाद उसे लगा जैसे अब कुछ करने को बाकी ही नहीं रह गया। ……… अब तक रमला अपने प्रति सर्वथा शून्य थी। ……… किन्तु भाई की सेवा का अकथ परिश्रम— जीवन का यह कार्यक्रम अब उसे यथेष्ट नहीं मालूम होता।"

"वह प्रेम चाहती है, प्रेम जिसमें केवल सरसता, सौजन्य ही नहीं, कुछ मोह हो, आकर्षण हो, और हुकूमत भी हो। …… उसका मन किसी का आधिपत्य चाहता है। उसका सम्पूर्ण जीवन अभावमय बन गया है।" और यह अभाव, यह पराजय, उस दिन सम्पूर्ण हो गई जिस दिन कि विचारमग्न रमला को भाई ने मानों सोते से जगा दिया।

"भाई भागते हुए घर में आए और घबरा कर बोले— "सुना रमला, ज़मींदार रंगपुर ने दूसरा विवाह कर लिया है !"

"रमला चित्रवत् खड़ी रह गई। इस समय हँस कर वह भाई को उस ओर से उपेक्षा नहीं दिखा सकी— दिखाने की सामग्री भी शायद समाप्त हो चुकी थी। उसके हृदय की गति जैसे थोड़ी देर को बन्द सी हो गई। और पुनः गति का आभास मिलते ही वह बेहोश सी भाग कर शय्या पर गिर पड़ी।"

"वह 'नारीत्व' अश्रु धारा में डूबने लगा" लिख कर लेखिका-श्री ने अपनी इस चिरस्मरणीय कथा का अन्त कर दिया। केवल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक वाक्य उन्होंने अन्त में नहीं लिखा— रमला ने अपने जीवन में केवल उसी दिन स्पष्ट आभास पाया कि 'नारीत्व' क्या है ? कहानी इस चिरन्तन सत्य को दिवा-प्रकाश के समान स्पष्ट कर जाती है कि वैसे तो 'नारीत्व' नारी के लिए एक अत्यन्त साधारण तत्व है, जैसा कि सांस लेना। कभी कभी तो जीवन के कितने ही लम्बे वर्ष उसे अपने अन्तर के किसी कोने में छुपाये वह बिता देती है। शायद अनेक बार तो आजीवन उसे इस 'त्व' का अनुभव नहीं होता। किन्तु जिस दिन, जिस घड़ी, जिस क्षण भी उसके 'त्व' को किसी ओर से भी चुनौती मिली कि वह सोये हुए विषधर-सा विकल होकर तड़प उठता है। वह उस चुनौती का उत्तर देने के लिये क्या नहीं कर डालना चाहता? और उत्तर देने में विवशता अनुभव होने पर वह 'मणिबिन फणि' के समान अपने जीवन— अपने अस्तित्व मात्र को ही मृषा मानने लगता है। यह है वह चिरंतन किन्तु दुरूह तत्व जिसको लेखिकाश्री की प्रतिभा ने पाठक-साधारण के लिए सुलभ, सुस्पष्ट कर दिया है। इस दृष्टि से 'हार' हिन्दी साहित्य की एक अनोखी कहानी ही नहीं है, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आख्यायिका भी है, जो हिन्दी के लेखक-लेखिकाओं के लिए उनके प्रतिभा-प्रदर्शन के लिए नये क्षेत्रों की ओर संकेत करती है, उन्हें नई दिशाओं, अछूती कुञ्जगलियों में विचरने की प्रेरणा देती है।

इस व्याख्या-परिचय के तनिक लम्बे हो जाने के ख़तरे को उठा कर भी मैं श्री कमला चौधरी की 'हार' एवं गुरुदेव श्रीरवीन्द्र के सुविख्यात उपन्यास 'कुमुदिनी' की कुछ समानताओं की ओर संकेत किये बिना नहीं रह सकता। कारण कि मेरी विनम्र राय में 'कुमुदिनी' के उल्लेख के बिना 'हार' की कहानी-कला की प्रखरता स्पष्ट हो नहीं पायेगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'कुमुदिनी' में भी रविबाबू ने भाई के प्रेम का अभिभूतकारी प्राधान्य दिखाया है। उसमें भी कुमुदिनी अपने भाई के स्नेह-सलिल में ही बद्ध-मूल थी। लगभग वैसी ही परिस्थितियों में कुमुदिनी को पतिगृह में रहना पड़ा। कुमुदिनी के पति उम्र में बड़े थे एवं उनके सभी छोटे भाइयों के विवाह हो जाने के पश्चात् उन्होंने विवाह का निश्चय किया था। 'कुमुदिनी' को भी अपने श्वसुर-गृह में अपने भाई के घर की अवहेला वैसी ही कुछ लगी जैसी कि मलेरिया के दीर्घ रोगी को क्विनाइन-मिक्सचर का स्वाद! आख़िर एक दिन 'कुमुदिनी' की पालकी भाई के द्वार पर आ लगी।

पाठकों को लगेगा मानों 'हार' में और 'कुमुदिनी' (उपन्यास) में आद्योपान्त समता है, पर ये दोनों कथा-कृतियां, एवं कुछ अर्थों में दोनों ही अनोखी कला-कृतियाँ एक दूसरे से उतनी ही भिन्न हैं जितनी कि कुमुदिनी एवं कमलिनी। एक चन्द्र से प्रेरणा पाती है, दूसरी सूर्य से। 'कुमुदिनी' को हल्का, कोमल प्रकाश ही सुहाता है। वास्तविकता एवं जीवन की यथार्थता का आतप उसे सह्य नहीं है। इसीलिए रविबाबू ने उसके पति-गृह से, वह अपने पति-गृह के उत्तराधिकारी की मां बनने वाली है, यह आभास मिलते ही, पालकी भिजवादी। कुमुदिनी के मन का विद्रोह, तूफ़ान, मानों इस प्रकार अन्त में मान-सरोवर के शान्त सलिल में प्रशान्त हो जाता है। किन्तु क्या वह कवि-हृदयोचित कोमलता एवं भावुकता के कारण ही रविबाबू ने नहीं किया? क्या उनका मन उस कठोर सत्य का सामना करने से तो नहीं बच निकला जो कुमुदिनी को सूर्यातप की भांति कुम्हला देता एवं झुलसा देता? अथवा कुमुदिनी का विद्रोह रमला की क्षुब्धता एवं हताशा की कोटि तक नहीं पहुँच पाया था?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन प्रश्नों का उत्तर देने को आज तो गुरुदेव भी हमारे बीच नहीं रहे। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि एक नारी यदि कुमुदिनी के असन्तोष एवं विद्रोह के मंज़िल तक पहुँच सकती है तो दूसरी 'हार' की नायिका 'रमला' की विकलता एवं विक्षुब्धता तक भी जा सकती है। रमला की कोटि की वह क्षुब्धता की तीव्रता एवं शान्तता 'हार' में रंगपुर के ज़मीदार द्वारा दूसरा विवाह करा कर, एक सुनिश्चित रूप ग्रहण कर लेती है और इसीलिए वह कहानीकार की कला एवं कल्पना से समाधान भी चाहती है।

श्री कमला चौधरी ने इस कथा की नायिका के चरित्र-चित्रण में भी अपने उसी अभूतपूर्व नैतिक साहस एवं विशुद्ध कलाकार के दृष्टि-कोण से काम लिया है जो रूढ़ियों एवं परम्पराओं की रत्ती भर पर्वाह न कर अपना स्वच्छन्द मार्ग ग्रहण करता है।

किन्तु श्री कमला जी का कौशल (आर्ट) केवल भ्रमपूर्ण अथवा उद्देश्यहीन प्रगतिशीलता के बन में ही नहीं भटक जाता। बल्कि वह सुस्पष्ट एवं मनोविकास-सिद्ध समाधान एवं व्याख्याएं भी प्रस्तुत करता है जिसके लिए न केवल कलाकार को कल्पनाशील होने की अपेक्षा है वरन् असाधारणतया नैतिक रूप से साहसी होना भी, जिसके लिए अनिवार्य है।

पाठक इस संक्षिप्त से व्याख्या-परिचय द्वारा, इसके ठीक बाद में दी जाने वाली मूल आख्यायिका 'हार' की समस्या एवं उसके कुशल एवं मनोविज्ञान-सिद्ध समाधान के यदि अपने को निकट पाएंगे तो मां-भारती के मन्दिर में इस त्रिदलात्मक 'बेल-पत्र' के प्रस्तुतकार आराधक— विनम्र साहित्य-साधक का प्रयास, कृतकृत्य हो जाएगा !

— ल० त्रि०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'हार'

रमला के माता-पिता नहीं हैं, केवल एक भाई है। रमला के लिए भाई ही सब-कुछ है और भाई के लिए रमला।

रमला के भाई दार्शनिक हैं। सांसारिक झंझटों से दूर रहना चाहते हैं, इसी लिए शायद अविवाहित हैं। रोगी भी हैं। केवल रमला के लिए ही घर-गृहस्थी, जमींदारी और अनेक कार्यों को उपेक्षा के साथ अपनाये हुए हैं; किन्तु रमला नहीं चाहती कि इच्छा के विरुद्ध उसका भाई किसी भी चिन्ता को सहन करे। यथाशक्ति वह भाई को प्रत्येक कार्य से मुक्त रखना चाहती है, इसीलिए वह स्वयं कार्यदक्ष है। घर की ही नहीं, ज़मींदारी की सारी व्यवस्था वह स्वयं ही करती है। भाई को एक प्रकार से उसने अपने पर ही निर्भर कर लिया है— भाई की छोटी-से-छोटी आवश्यकता की पूर्त्ति रमला ही के सहयोग से होती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब रमला घर न होगी, उस दिन क्या होगा ? इस बात को बहुधा भाई-बहन दोनों ही सोचते हैं। भाई लापरवाही से परिणाम पर पहुंचते हैं— ऊंह, फिर मैं इन झंझटों में पड़ूंगा ही क्यों ? सारी सम्पत्ति रमला के नाम लिखकर दार्जिलिंग चला जाऊंगा। रही स्वास्थ्य की बात, सो वह तभी तक ख़राब है, जब तक वह सेवा का आदी है, दूसरे पर निर्भर है और अविराम गति से उसकी चिन्ता की जाती है; उसके सुधार की अनिवार्यता समझी जाती है। फिर सब ठीक हो जायगा।

लेकिन यह उपेक्षा पूर्णतः नहीं निभाई जा पाती। इस उपेक्षा में ममता के कण टपक पड़ते हैं। हृदय में ठेस लगती है। क्षण-भर को वे दार्शनिकता से कुछ दूर हो जाते हैं— मन पुकार उठता है— रमला-रमला! वे पुस्तक मेज़ पर रख देते हैं और टहलने लगते हैं। टहलते-टहलते फिर किसी विचार-धारा में डूब जाते हैं, और उपेक्षा की अनिवार्यता भी जाती रहती है।

बहन के हृदय में केवल भ्रातृ-प्रेम, वात्सल्य, ममता ही नहीं है; भाई के प्रति अगाध श्रद्धा भी है, असीम भक्ति भी है, और इस श्रद्धा-भक्ति के सम्मुख वह संसार की सारी न्यामतों को तुच्छ ठहराती है। अन्य आकांक्षाओं से वह अपनी इस श्रद्धा-भक्ति की सफल आकांक्षा को अधिक महत्व देना चाहती है।

रमला के बिना भाई का कोई भी कार्य कैसा होगा ? उनका स्वास्थ्य कितना ख़राब रहता है। समय पर लाभदायक भोजन करना, औषधि लेना आदि भी तो वे स्वयं नहीं कर सकेंगे। समय-असमय का विचार किये बिना ही बस दिन-रात पुस्तक पढ़ते रहेंगे। परिणाम पर पहुँचते-पहुँचते रमला आन्तरिक व्यथा से रो उठती है— वे और भी निर्बल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो जायंगे, रोग सदा से उनके साथ लगा है। रमला की सावधानी ही किसी प्रकार भाई को रोग के पूर्ण प्रकोप से बचाये है। रमला के अभाव में कहीं वे रोग-शैया पर ही न पड़ जांय ? फिर.........

इसलिए रमला ने निश्चय किया था—वह भी अविवाहित रहेगी; परन्तु कुछ दिनों से अनुभव करती है कि इस निश्चय से छुटकारा नहीं हुआ। आजकल भाई को उसके विवाह की चिन्ता विकल कर रही है और वे बहुत परेशान से हैं। स्वास्थ्य पर भी इस चिन्ता का यथेष्ट प्रभाव जान पड़ता है। रमला क्या करे ? वह विवाह भी करले और यह भी सम्भव है कि वह पति को भाई के समीप रहने को राजी भी कर ले। उसके देवतातुल्य भाई के संसर्ग में रहना कौन अस्वीकार करेगा ? भाई का सत्संग जिसे मिले उसका भाग्य धन्य हो जाय; परन्तु इतने ही से तो समस्या पूर्ण नहीं होती। वह अपने भाई की कमज़ोरी जानती है। उन जैसे व्यक्ति के लिए वर तलाश करना कितना कठिन कार्य है ? और यही चिन्ता भाई की साधना में आजकल बाधक हो रही है।

२

ज़मींदार रंगपुर के प्राईवेट सेक्रेटरी रमला से विवाह का पैग़ाम लाये हैं। भाई चाहते थे ज़मींदार के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दें; परन्तु समीप ही चाय बनाती हुई रमला के मुख पर सन्तोष के चिह्न जान पड़े और आँखों में प्रसन्नता की झलक। वे अपना फ़ैसला देने से रुक गए, और उन्होंने ज़मींदार के प्राईवेट सेक्रेटरी को विचार करने के लिए समय की आवश्यकता बतला कर बिदा कर दिया।

रमला को स्कूल-कालेज की शिक्षा नहीं मिली है और न उसकी शिक्षा में उस पद्धति ही को अपनाया गया है। इसलिए रमला की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शिक्षा की सीमा नहीं बताई जा सकती है, वैसे घर पर उसने भाई से बहुत कुछ शिक्षा पाई है। किताबी शिक्षा भी कम नहीं है। अपने देश का नवीन-प्राचीन साहित्य, अन्य देशों का साहित्य, विज्ञान, दर्शन—सभी के थोड़े-बहुत अध्ययन का उसे अवसर मिला है। वह विदुषी है; परन्तु आधुनिक शिक्षा के वायुमंडल के प्रभाव से विलग है। प्रभाव उस पर भाई का है, इससे अधिक यदि कुछ है, तो अपने देश के पुराने साहित्य का— विशेषतः रामायण का। इन्हीं वस्तुओं से तो उसने श्रद्धा-भक्ति का पाठ पढ़ा है।

उसकी विद्वत्ता पर भाई को पूरा विश्वास है, अतः इस विवाह के निर्णय का भार उन्होंने रमला ही पर छोड़ दिया और अपने को बहुत कुछ हलका भी अनुभव किया। साथ ही अपना विचार भी ज़ाहिर कर दिया— 'रमला, रंगपुर के ज़मींदार सम्पत्तिशाली हैं और उन्हें अपनी सम्पत्ति पर घमण्ड भी कम नहीं है। विलासी भी हैं; लक्ष्मी, कीर्त्ति और शासन के साधक हैं। विलास की सामग्रियों के पूर्ण उपभोगी हैं। तेरी क्या उनसे निभ सकेगी? सोच लो, परस्पर दोनों के विचारों में ज़मीन-आसमान का अन्तर रहेगा।"

रमला ने अपने निश्चय की सफ़ाई न देकर केवल स्वीकृति दी। भाई को यह स्वीकृति अच्छी नहीं लगी; किन्तु वाद-विवाद करना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। रमला विदुषी है। उसके पास अपनी विचारशक्ति है। वह सन्तुष्ट है, तो फिर 'नहीं' की गुञ्जाइश नहीं है।

और रमला ने इस विषय पर विचार करने की मन में आवश्यकता ही उत्पन्न नहीं होने दी। वह हिन्दू स्त्री है; पति कैसा भी हो; वह पति के साथ निर्वाह कर सकती है और आँख मूंदकर पति की इच्छाओं पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चल सकती है। पति की आज्ञाओं का पालन करना स्त्री का फ़र्ज़ है। पति कैसा ही हो— चरित्रहीन हो, चरित्रवान् हो, इसकी विवेचना करना स्त्री का कर्तव्य नहीं। उसने अपने सम्मुख शिव-पार्वती के विवाह का आदर्श रखा और यथाशक्ति पार्वती के हृदयगत विचारों तथा भावों की कल्पना करके उन्हें अपने हृदय में संचित कर लिया।

सतयुग का स्वप्न देखती हुई वह भाई को चिन्ता-मुक्त करके प्रसन्न हो उठी।

३

विवाह-कार्य समाप्त होते ही होते रमला को पार्वती, सावित्री जैसी श्रद्धा की हृदय में कुछ कमी अनुभव होने लगी। अभी तो कठिन परि-स्थितियों से सामना भी नहीं पड़ा है; किन्तु वह देखती है कि भाई के प्रति उसकी वह ज़बरदस्त श्रद्धा ही पति के प्रति श्रद्धा का अंकुर जमने नहीं देती है। रात में पति से कितनी देर तक बातें हुई हैं और उनकी ओर से प्रेम दिखलाने की भी कम कोशिश नहीं थी। फिर भी प्रातः वह हृदय पर बड़ा भारी बोझा-सा लेकर उठी है।

पति की बातें लोक-रीति के अनुसार ठीक ही हैं। शिष्टाचार के विरुद्ध भी नहीं हैं। उनकी बातों में रस है, प्रेम है, आदर है और रमला के रूप के प्रति आकर्षण भी कम प्रतीत नहीं होता। परन्तु रमला को ऐसा जान पड़ा— प्रत्येक बात के अन्तरंग में, अज्ञात रूप से, भाई के अनादर की सी ध्वनि आती है। मेरे भाई इनकी तुलना में नहीं ठहरते, तो आदर, सम्मान, प्रतिष्ठा ही में क्यों इनसे बढ़ गए हैं? उनके अन्तर की ईर्ष्या शायद इस विचार को सहन नहीं कर सकती है। वे उसे भूलते नहीं हैं, बल्कि हर समय याद रखना चाहते हैं, और शायद मुझे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी जतला देना चाहते हैं कि इतने छोटे ज़मींदार की बहन से विवाह करके उन्होंने भाई को धन्य कर दिया है।

और यही बात रमला की बरदास्त से बाहर है। उसका हृदय यहां पर जवाब सा दे रहा है। वह श्रद्धा-विश्वास को लेकर पति-भक्ति करने आई थी; किन्तु वह श्रद्धा-विश्वास डगमगाता मालूम देता है। वह अनुभव करती है कि उसके हृदय में भी अभिमान सा उत्पन्न हो रहा है, तभी तो उसे पराजय स्वीकार करना सहन नहीं है। देवता की आराधना के प्रारम्भ ही में लक्ष्य क्या कभी भक्ति, उपासना बना सका है? अपने पितृ-कुल का गौरव मात्र भी तो उस भक्ति पर न्यौछावर नहीं हो सका है? पति के हृदय में भाई की श्रद्धा की सम्पूर्णता का अनुमान कराने में उसने भी शायद कुछ उठा नहीं रखा है? उसकी प्रत्येक बात से पति को भी विरोध-ध्वनि का आभास मिला होगा।

उसने पार्वती से श्रद्धा-भक्ति का वरदान मांगा था, और उसी अवलम्ब को लेकर वह पथगामी बनी थी; परन्तु वह अवलम्ब निर्बल प्रतीत होता है— यथेष्ट नहीं है। वह अवलम्ब केवल सावधान ही करता है, उसमें शायद जब्र करने की शक्ति नहीं है। वह आकर्षण नहीं है, जो विपरीत धारा की ओर से विमुख कर सके— इन विद्रोह के अंकुरों को पूर्णतः कुचल दे।

यह क्या हुआ? और भविष्य क्या होने वाला है? वह धारणा भ्रमपूर्ण रही— हृदय वैसा निस्पन्द नहीं है, रिक्त नहीं है और महत्वाकांक्षाओं की ओर से उदासीन नहीं है। विज्ञान की रश्मियां स्फुटित होती प्रतीत होती हैं, और वह रश्मियां केवल मुग्धा ही नहीं हैं। उसमें क्या नहीं है— मान, सम्मान, अभिमान सभी कुछ तो है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हृदय आज ही पुकार-पुकार कर कहना चाहता है— भूल थी, भूल ! मन में आज ही विश्लेषण करने की शक्ति जाग्रत हो गई है; आकांक्षाएं अपनी रुचि का दिग्दर्शन कराने को विकल हैं— उतावली हैं। हृदय की मुग्धता जवाब देती प्रतीत होती है— वहां पति शब्द के लिए आदर का स्थान है; पति-सेवा के लिए चाहना है, तत्परता है; पति की आराधना के लिए तन्मयता है; किन्तु उनके हृदय के अभिमान के लिए स्थान का अभाव है। वह हृदय पति पर न्यौछावर हो सकता है— कुर्बान हो सकता है। वह हृदय पति के लिए प्रेम की मदिरा उत्पन्न कर सकता है; किन्तु पति के मुख से जो मदिरा की दुर्गन्ध आती है, उस पर कुर्बान नहीं हो सकता है। कुछ ऐसी ही बात है— इसी प्रकार का अभाव है।

सोचते-सोचते रमला विचलित हो उठी— यह सब क्या है ? वह किधर जा रही है, किस ओर बह रही है ? इतनी देर से यह क्या सोच रही है ? वह सब भूलने की चेष्टा करने लगी और जल्दी-जल्दी दोहराने लगी— "अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ....."

उसी समय नौकर ने आकर कहा— "आपको सरकार साहब याद करते हैं।"

रमला घबरा उठी। हृदय में कम्पन होने लगा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे इस समय वह पति के सम्मुख जाने के अयोग्य है। उसने पति के प्रति अपराध किया है, अनाचार किया है, अनादर किया है, पाप किया है। इस समय की उसके हृदय की सामग्री देवता के ध्यान करने के भी योग्य नहीं है— अशुद्ध है, अपवित्र है, दूषित है। सेवा की सामग्री छूने के भी अयोग्य है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अच्छा",— कह कर वह भागी। उसने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर लिया, और पूजा की आसनी पर मस्तक नत करके बैठ गई। उसने रामायण का वही पार्वती तपस्या वाला प्रकरण खोल लिया, और कुछ अंश जल्दी जल्दी दोहराने लगी। कहीं फिर अभाव बाकी न रह जाय, इसलिए उसने फिर सीता-अनुसूया के संवाद का प्रकरण खोला और सम्पूर्ण शक्ति लगा कर अपनी भावनाओं को पवित्रतम बनाने का उद्योग किया। सारी छिन्न-भिन्न हुई श्रद्धा-भक्ति को फिर हृदय में संचय किया, और पति शब्द को माथा टेक कर, आदर, सत्कार तथा पति-प्रतिष्ठा को लेकर वह पति के सम्मुख भयभीत-सी उपस्थित हुई।

वे हँस पड़े— "देखता हूँ, भाई ने बहन को भी बड़ी भारी पुजारिन बना दिया है। यह सब वहीं तक उचित था। कल से इस आडम्बर को समाप्त करो।"

रमला का हृदय धक से हो गया। पति की उस हँसी में उसने जाने क्या क्या पढ़ लिया। क्षण-भर पहले मिटाये हुए विद्रोह के चित्र हृदय में फिर अंकित होने लगे। वह एक भारी भार-सा सम्भालती हुई कुर्सी पर बैठ गई।

४

इतने दिनों का सारा परिश्रम व्यर्थ गया। रमला अब पूर्णतः निराश हो चुकी है— उसकी पुरानी धारणा कोरी कल्पना ही निकली; उसमें सत्यता का सार नहीं था।

रमला ने भली भाँति जान लिया है— सीता, सावित्री, पार्वती जैसी श्रद्धा उसके काबू की वस्तु नहीं है। इसलिए अब उसने उसकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साधना भी छोड़ दी है, बल्कि अन्ध-विश्वास कहकर रमला अब उस श्रद्धा-भक्ति की उपेक्षा करती है।

और रंगपुर के जमींदार केवल रमला के रूप के ही लोभी नहीं हैं। वे रमला के हृदय को भी अपने अधीन करना चाहते हैं। रमला के हृदय पर से भाई की प्रतिष्ठा की छाप मिटाकर अपनी प्रतिष्ठा की छाप डाल कर ही वे सन्तुष्ट हो सकेंगे। उनकी इस अपार वैभव-श्री की उपेक्षा करके उस दार्शनिक रूपी पागल मनुष्य की सुकीर्ति का गान सुनने में ज़मींदार साहब अपनी पराजय अनुभव करते हैं, और वे इस पराजय को कदापि स्वीकार नहीं कर सकेंगे। किसी प्रकार भी हो, रमला के हृदय पर उन्हें विजय प्राप्त ही करनी है।

लेकिन उनकी चेष्टाएं विपरीत फल दे रही हैं। उन चेष्टाओं ने रमला को उसकी पुरानी धारणाओं की ओर से पूर्ण विद्रोही बना दिया है। परिस्थितियों ने उस श्रद्धा-भक्ति के आडम्बर को भी टिकने नहीं दिया है। अब तो रमला की पति-भक्ति शिष्टाचार की सीमा का भी उल्लंघन कर गई है। उसने पति की मर्यादा के प्रतिकूल घोषणा कर दी है कि वह मदिरा से उन्मत्त पति की सेवा करने में असमर्थ है। विलासी पति की मनोवृत्ति के अनुकूल वह नहीं चल सकेगी, और वह पति की आज्ञा के प्रतिकूल ही भाई के समीप जाना चाहती है।

रंगपुर के गौरव-सम्पन्न ज़मींदार स्त्री की यह अवहेलना कैसे बरदाश्त कर सकते हैं? उनके हृदय में प्रतिशोध के उफान उठ रहे हैं और रमला के हृदय में विद्रोह के।

रमला चली आई। भाई ने कहा— "तेरी नहीं पटी?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह हँस पड़ी, जैसे न पटने वाली बात उसके लिए तनिक भी महत्व नहीं रखती। उसकी हँसी कह रही थी कि वह तो तुम्हारी वही पहले वाली बहन रमला है, और वह तुम्हारी सेवा-भक्ति ही में संतुष्ट रह सकती है। इसके सिवा उसे कुछ और चाहिये भी तो नहीं। वह तो संसार की सारी न्यामतें तुम्हारे वात्सल्य पर न्यौछावर कर सकती है। तुम्हारे लिए ही उसने अविवाहित रहने की बात सोची थी और विवाह भी तुम्हें ही सन्तुष्ट करने के लिए कामनाशून्य होकर किया था। तुम्हारी मर्यादा के रक्षा-हेतु ही पति से निभ नहीं सकी है। जिस हृदय में तुम्हें देवत्व-सी ऊँची पदवी मिली है, जहाँ तुम्हारे स्नेह की सरिता पूर्ण गति से बह रही है, वहाँ तुम्हारे प्रतिद्वन्द्वी को स्थान मिलना किस प्रकार सम्भव है?

वह तो अपने जीवन का क्रम पहले ही निश्चित कर चुकी थी, भाई ने व्यर्थ ही उसमें बाधा डालने की चेष्टा की। ख़ैर, अब भी क्या बिगड़ा है? आज से फिर वह अपने उसी क्रम के अनुसार मार्ग अवलम्बन करती है। भाई से उलहने के ढंग पर उसने कहा— "घर की सफाई कब से नहीं हुई है? यह नौकर बैठे-बैठे क्या करते हैं? और सेफ़ की चाबी कहां है? इतने दिनों का हिसाब वगैरा किसके पास है?"

भाई ने तुरन्त ही चाबी देकर अपने सर का बोझा उतार-सा दिया। एक दृष्टि से उन्होंने रमला के अन्तर तक का निरीक्षण करना चाहा— क्या सचमुच ही इसके लिए कुछ भी नहीं हुआ? यह सन्तुष्ट है? प्रसन्न है? वे भाई-बहन के सम्बन्ध की बात सोचने लगे— इस सम्बन्ध के बीच के सत्य और सरल पवित्र प्रेम की फिलासफी ढूंढने लगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रमला सेफ की चाबी लेकर हंसती हुई चली गई। उसकी हंसी में विजय का गर्व था— भैया, तुमने देख लिया न बहन का प्यार, स्नेह, ममता, श्रद्धा-भक्ति और त्याग।

५

कुछ दिन बीतते-न-बीतते वह विजय-गर्व पराजय में परिणत होने लगा। घर की सारी व्यवस्था ठीक कर लेने के बाद उसे ऐसा जान पड़ने लगा, जैसे अब कुछ करने को बाकी ही नहीं रह गया। वे पहले दिन विदा हो गए, अब रमला में भारी परिवर्तन हो गया। नवीनता उसे अपना शिकार बना रही है। वह क्या करे, अज्ञात रूप ही से वह किसी नवीन धारा की ओर बह रही है। हृदय ने एक नवीन योजना तैयार की है, एक नवीन सृष्टि की है, एक ज्वलित किन्तु नवीन आकांक्षा को जन्म दिया है। और शायद उसी आकांक्षा को कहते हैं प्रेम-तृष्णा! उसमें सम्पूर्ण नारीत्व एकबारगी जाग्रत हो गया है। इस नारीत्व ने पति के प्रति अभावों का खजाना ही खोल दिया है और साथ ही उन अभावों की पूर्ति की चाहना।

अब,तक रमला अपने प्रति सर्वथा शून्य थी। उसने भाई को जाना था, भाई के प्रति सरल प्रेम को जाना था और भाई की श्रद्धा-भक्ति पर मुग्ध होकर सर्वस्व त्याग की कल्पना, योजना करने को वह तैयार हुई थी। यह विवाह भी उसी योजना का कार्यक्रम था; परन्तु उस त्याग में बाधा उत्पन्न हुई पति की ओर से भाई के प्रति उपेक्षा, अनादर, अपमान। भक्त-हृदय इष्ट की अवहेलना, उपेक्षा और अपमान नहीं सहन कर सका, और वह हृदय आदर्श की बात भूलकर चुपचाप विद्रोही बन गया। उसने निश्चय कर लिया कि कुछ हो, वह अपने ध्येय पर दृढ़ है, अटल है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपने ध्येय के लिए सब कुछ सहन है, सब कुछ त्याज्य है; परन्तु त्याग की साधना में यह नवीन आकांक्षा बाधा दे रही है। उसकी साधना का हरा-भरा उपवन इस एक विषैले कीटाणु के कारण सूखता प्रतीत होता है। उसके शान्ति के साम्राज्य में इस भयावनी आकांक्षा ने क्रान्ति मचा दी है। रमला अपने उस सुख-साम्राज्य की रक्षा कैसे करे? यह क्रान्ति दबाये दबती नहीं। इसने उसके आन्तरिक साम्राज्य में हाहाकार मचा दिया है। यह क्रान्ति, यह विद्रोह, यह विस्फोट, क्या उसका सब-कुछ हरण करके रहेगा? उसका सन्तोष चला गया है। केवल भाई के सरल सौजन्य वात्सल्य में ही अब वह सन्तुष्ट नहीं है। भाई की सेवामात्र में ही अब शान्ति नहीं है। मन-रूपी मृग की मृग-तृष्णा उसे अब खाये जा रही है। भाई की सेवा का अकथ परिश्रम—जीवन का यह कार्यक्रम अब यथेष्ट नहीं मालूम देता है।

वह प्रेम चाहती है— ऐसा प्रेम, जिसमें केवल सरलता, सौजन्य, ही न हो, कुछ मोह हो, कुछ आकर्षण हो, कुछ व्यवहारिकता हो और हुकूमत भी हो। यहाँ तो वह सेवा में परतन्त्रता चाहती है। सेवा की अनिवार्यता चाहती है। उसका मन अपने पर किसी का आधिपत्य चाहता है। और वह चाहना दिन-पर-दिन प्रबल हो रही है। उसका सम्पूर्ण जीवन अभावमय बन गया है।

प्रारम्भ से अब तक अपने जीवन पर दृष्टि डालती हुई रमला सोचने लगी— विवाह करके उसने कैसी भारी भूल की। अपनी साधना में विघ्न-बाधा उत्पन्न कर दी। उसका सोने का संसार मिट्टी हो गया है। भाई की भक्ति, सेवा, उपासना में पवित्र जीवन व्यतीत करने का सुख-स्वप्न भंग हो गया। परन्तु उसी समय इस नवीन परिवर्तन के अनुभव ने कहा— क्या मालूम, विवाह ही कारण रूप है? तुम्हारे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हृदय की ये छिपी क्रियाएं सम्भव है, कभी स्फुटित ही होतीं ? हां, तुमने भूल की है, और वह भूल पति के निर्वाचन में हुई है।

रमला रो उठी। उसका नारी-हृदय बुद्धि की इस कटुता को कैसे सहन करे ? मस्तिष्क तू ही तो सब कुछ नहीं है ? हृदय भी तो अनुभव करने की शक्ति रखता है ? वह जानता है— सत्यता का सार किसी में हो, इससे क्या ? वह अपने इस अनुभव की बात भूलना चाहता है, वह उसे छिपाना चाहता है और छिपाकर सर्वथा उसका नाश करना चाहता है। मस्तिष्क तू बार-बार यह आघात, वज्रपात क्यों करता है ? तेरी यह सफ़ाई; यह सचाई— नहीं, नहीं, निर्दयता, कठोरता, कटुता उसे असह्य है। नारी-हृदय इसमें अपनी दुर्बलता अनुभव करता है। यही नहीं, वह इसे पाप ही समझता है।

निर्वाचन ! निर्वाचन, यह है क्या ? नारी-हृदय के लिए यह कुछ नहीं ! केवल श्रद्धा, भक्ति, उपासना, आराधना, पूजा, विश्वास !

बुद्धि ने कहा, केवल इतना ही नहीं, मेरी सत्ता क्या कुछ है ही नहीं ? तुम्हारे हृदय को क्या कहा जाय, वह तो अपनी इस असमर्थता पर, इस क्रान्ति पर, इस विद्रोह पर, अपनी इस रुचि पर रोयेगा, पश्चात्ताप करेगा। उसे शान्ति कहां ? स्वयं ही उसे अपने पर ग्लानि होगी। वह अपने को आदर्शहीन समझेगा। और सम्भव है अपनी इस भावना को वह अनाचारिणी, दुराचारिणी, पतिता और न जाने क्या क्या समझ ले ? हाँ, देखो न, इस पाप को, अनाचार को, पश्चात्ताप को भूलने का उस अनोखे नारी-जगत् में कोई उपाय है ही नहीं !

तुम चाहती हो, अब तक जो कुछ हुआ है, उस पर परदा पड़ जाय; तुम उस ओर से अज्ञान, अनभिज्ञ, शून्य हो जाओ; किन्तु यह कैसे हो ? यह सब सम्भव कैसे है ? तुम्हारी नवीन आकांक्षाएं, तृष्णाएं,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावनाएं तुम्हें यह कुछ नहीं करने देंगी। वे कदापि तुम्हें उस ओर से विमुख नहीं होने देंगी, बल्कि ये स्मृतियाँ नित्य नये रंग बदल-बदल कर चित्रों को नवीन रखेंगी। ये चित्र अतीत के होकर भी स्मृति में वर्तमान रहेंगे।

इस ज्वाला से मुक्ति नहीं है। जो प्रदर्शन प्रत्यक्ष हो चुका है, उसे अब आवरण-आच्छादित करना दुर्लभ ही नहीं, असम्भव है। इस नारीत्व की महत्ता में ये केवल सुखद या दुखद स्मृतियाँ ही नहीं; वेदनाएं, पीड़ाएं और प्रचण्ड ज्वालाएं बन जायंगी। और इन ज्वालाओं के जले घाव सूखते नहीं, बराबर ताज़े होते हैं। यही तो नारीत्व है और यही है नारी-स्वभाव की महिमा।

भाई ने विचारों की शृङ्खला तोड़ दी। वे भागते हुए आये और घबराकर बोले— "सुना रमला, ज़मींदार रंगपुर ने दूसरा विवाह कर लिया है।"

रमला चित्रवत् खड़ी ही रह गई। इस समय हँसकर वह भाई को उस ओर से उपेक्षा नहीं दिखा सकी— दिखाने की सामग्री शायद समाप्त हो चुकी थी। उसके हृदय की गति जैसे थोड़ी देर को बन्द-सी हो गई। और पुनः गति का आभास मिलते ही वह बेहोश सी भागकर शय्या पर गिर पड़ी।

वह नारीत्व अश्रु धारा में डूबने लगा!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रियासती प्रजा के मुक्ति-संग्राम की दो अमर कहानियाँ—

१

जय काश्मीर !

श्री अरुण एम. ए.

भू-स्वर्ग में खूनी फ़ासिस्ट भेड़ियों का ताण्डव व स्वातन्त्र्य-युद्ध की घोषणा एवं प्रगति; भारत का सिर संसार में हिमालय की भाँति ऊँचा उठाने वाली सत्य घटनाओं के शब्द-चित्र।

२

बारक-छाया

श्री लक्ष्मण त्रिपाठी 'बाग़ी रियासती'

"ऐसा साहित्य उठते हुए राष्ट्र के लिए धर्म-ग्रन्थों जैसा पवित्र, बलि-पथ जैसा प्रेरक है ...... पुस्तक सामयिक है, किन्तु मानवता पर किये गये अत्याचारों की यह कहानी युगों युगों पढ़ी जायेगी।"

—राष्ट्रकवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा'

हृदय-ग्राही एवं मार्मिक जीवन-झाँकियाँ —

१. **चवन्नीवाले** (कहानियाँ)
श्री सन्तोष नौटियाल ऐम. ऐस-सी.

२. **नरक का कीड़ा** (कहानियाँ)
श्री अरुण ऐम. ए.

३. **स्वप्न-भङ्ग** (कहानियाँ)
श्रीमती होमवती जी

४. **बारक-छाया**
(आत्मकथात्मक उपन्यास)
श्री लक्ष्मण त्रिपाठी एम. ए., साहित्यरत्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह पुस्तक—

'वेलपत्र' आधुनिक-कथाकार-माला की पहली कड़ी है।

आधुनिक कथाकार-माला निष्काम-प्रकाशन की एक अभिनव किन्तु अत्याकांक्षी योजना है। स्वयं कलाकारों द्वारा चुनी हुई उनकी सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियों को अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखे गये विशद व्याख्या-परिचयों सहित, इस प्रकार प्रस्तुत करना कि साधारण पाठक भी कथाकार की रचना-कला से भलीभाँति परिचित हो जायें, यही इस पुस्तक-माला का उद्देश्य है।

'वेलपत्र' में जिनकी कला-कृतियाँ संग्रहीत हैं, वे श्री कमला चौधरी हिन्दी की श्रेष्ठ कहानी-लेखिका हैं। उनके अनेक कहानी-संग्रहों के अनुवादित संस्करण भारत की प्रायः सभी प्रांतीय भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी कि श्री कमला चौधरी भारत की आधुनिक कहानी-लेखिकाओं में सब से अधिक पठिता एवं लोकप्रिया हैं।

कठिनाई से जिन्होंने अपने जीवन के अभी चार दशक पूरे किये हैं, वे श्री कमला चौधरी भारतीय विधान-परिषद की सदस्या एवं संयुक्तप्रांत की यशस्विनी देश-सेविका हैं। कहना न होगा कि उन्होंने ये कहानियां अपने विभिन्न कारा-प्रवासों एवं सार्वजनिक हलचलों के बीच लिखी हैं, जो उनके साहित्यिक दृढ़ संकल्प का प्रमाण है। एक आदर्श गृहिणी, स्नेहशीला माता एवं चिरस्मरणीया आतिथ्य-प्रवीणा श्री कमला जी का व्यक्तित्व उनकी कहानियों के समान ही अपने में अनुपम है।

'वेलपत्र' का संपादन एवं आयोजन हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ पत्रकार, कवि एवं समालोचक, प्रोफ़ेसर श्री लक्ष्मण त्रिपाठी, साहित्यरत्न, ऐम. ए., ने किया है। लेखिकाश्री का पूर्ण सहयोग एवं विश्वास उन्हें प्राप्त रहा है एवं लेखिका महोदया के साहित्य एवं व्यक्तित्व को निकटता से अध्ययन करने का सुअवसर भी उन्हें मिला है।

'वेलपत्र'— हिन्दी प्रकाशन-क्षेत्र में श्रेष्ठ कथाकृतियों को, एक अभिनव प्रणाली में प्रस्तुत करने के एक अभिनव उद्योग का, मंगलाचरण है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

tized by eGangotri and Sarayu Trust.

Public Domain. Funding by IKS-MoE